# पद्माकर कवि

चुने हुए छन्दो-सहित जीवनी और समालोचना )

शुकदेव दुबे, एम० ए०, साहित्यरत्न

साहित्य भवन प्रा० लि०
इलाहाबाद

द्वितीय संस्करण सन १९६४

मुद्रक प्रगति प्रेस, ७२ कल्याणी देवी, इलाहाबाद

# दो शब्द

किसी-किसी विद्वान ने रीतिकालीन कवि पद्माकर को अपने काल का सर्वश्रेष्ठ कवि माना है। इससे किसी का मतभेद भले ही हो, किन्तु उन्हे लोकप्रिय कवि मानने में किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए। इसका सबसे बड़ा प्रमाण उनकी रचनाओं का रसिकों द्वारा गा-गाकर दुहराया जाना है जो सर्व साधारण तक को स्पर्श कर लेती हैं।

इस पुस्तक में 'चयन' के रूप में 'पद्माकर' की चुनी हुई प्रतिनिधि रचनाएँ दी गयी हैं, जो उनके काव्य-कौशल पर पूरा प्रकाश डालती हैं। आशा है, इससे पाठकों को पद्माकर के जीवन-वृत्त, तत्कालीन ऐतिहासिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थिति, साहित्यिक एव सास्कृतिक वातावरण का आभास हो जायगा।

पुस्तक को तैयार करने में जिन सामग्रियों का उपयोग किया गया है, उनके लेखकों और प्रकाशकों के प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। श्री विद्यानिवास मिश्र ने विचार-गर्भित भूमिका लिख कर अपने सहज स्नेह का परिचय दिया है जिसके लिए मौन ही रहना सुकर है।

रीवा, —शुकदेव दुबे

१४ जुलाई, १९५६

# भूमिका

हिन्दी साहित्य के इतिहास में रीतिकाल के सम्बन्ध में कुछ बद्धमूल धारणाएँ बना ली गयी हैं, जो बहुत भ्रान्त हैं; उदाहरणार्थ रीतिकाल को ह्रासोन्मुख युग कहा जाता है और रीति तथा शृङ्गार की अभिव्यक्ति को कलुषित तथा अस्वस्थ कहा जाता है, रीतिकालीन कवियों को समृद्धि का दास तथा विलासी बतलाया जाता है। पर लोग यह भूल जाते हैं कि रीतिकालीन कविता विशुद्ध साहित्यिक परम्परा की अभिवृद्धि में ही फड़ी बनी। संस्कृत साहित्य में कालिदास, भारवि, माघ, अमरुक, हाल, राजशेखर, गोवर्धन आदि कवियों ने जिस सरस अभिव्यक्ति को आकार दिया, वही अपभ्रंश के माध्यम से प्रविष्ट होकर हिन्दी कविता में उत्तर-मध्यकाल तक आते-आते पूर्ण विकसित व्यक्तित्व पा सकी। संत कवियों में अभिव्यक्ति प्रौढ़ता नहीं पा सकी; क्योंकि उन्हें 'अनमिल आखर' की चिन्ता नहीं थी; वे अपनी गिरा को भगवद्भक्ति का साधन-मात्र मानते थे। पर रीतकालीन कवियो ने वाणी को साध्य माना और इसी से भावुक होते हुए भी उनकी पहली वफादारी वाणी के प्रति थी; वे अपनी देन में अपनी ओर से सौष्ठव, प्राणवत्ता और सरसता भरने में कोर-कसर नहीं रखना चाहते थे। राज्याश्रय में वे जरूर रहे, पर राज्यश्रय के हाथ बिककर नहीं; स्वच्छन्द और मुक्तानन्दी भाव से ही वे राज-दरबारों में ठसक के साथ रहते थे और काव्य-कौशल की दृष्टि से जब-तब कुछ फरमाइशी रचना स्तुति वाद में करके भी वे अपनी हार्दिकता असली काव्य-तत्वों में ही अर्पित करते थे। वे अपना पानी रखना जानते थे, इसीसे उनमें से बहुतों को एक दरबार से दूसरे दरबार में तमककर जाते देर नहीं लगती थी।

हमारी समझ में रीतिकालीन कविता का वास्तविक मूल्याकन अभी नहीं हुआ है; क्योंकि किसी-किसी पूर्वाग्रह के कारण उन कवियों की असल प्रतिभा की परख नहीं हो पायी है। राजनीतिक और सामा-

जिक वातावरण का प्रभाव कवि पर किस अनुपात में पड़ा है, इसकी अलग अलग समीक्षा किये बिना समस्त युग के काव्य को दासता और हीनता की भावना से प्रेरित और कामुक मनोवृत्तियों का दाय उद्घोषित करना बहुत बड़ा अन्याय है। प्रत्येक कवि का व्यक्तित्व अलग है और उस व्यक्तित्व के पहलू भी अनेक हैं। उन विकट परिस्थितियों में अपने व्यक्तित्व को किस कौशल से उनमें से रससिद्ध कवियों ने विकसित किया है, इसकी परीक्षा कुछ अधिक तटस्थ भाव से की जानी चाहिए।

हमें पूर्ण विश्वास है कि इस प्रकार विचार करने पर रीतिकाल के सम्बन्ध में आलोचना की दृष्टि बदल जायगी और तभी देव, बिहारी, पद्माकर, ठाकुर, नाथ, श्रीपति, बेनी—जैसे हृदयवान् कवियों का ठीक ठीक रसास्वादन हो सकेगा। शृङ्गार की प्रधानता, भाषा का मँजाव, उक्ति का वैदग्ध्य, छंद का बंध, मुक्तक की गठन, भावों का क्रम बद्ध आरोह अवरोह, सौंदर्य की परख, प्रकृति का संश्लिष्ट चित्रण, इन समस्त विशेषताओं से जिस युग का काव्य मंडित रहा, वह युग हिंदी साहित्य के इतिहास में गौरवहीन कहा जाय इससे बढ़कर ऐतिहासिक अन्याय की बात नहीं हो सकती।

पद्माकर का स्थान रीतिकालीन कवियों में मूर्धन्य स्थान पर आता है। पद्माकर की रसग्राहिता और कल्पनाशीलता का दूसरा जोड़ मिलना कठिन है। कुछ अनुप्रास के लिए उनका लोभ ज़रूर है, पर एक समन्वित शब्द चित्र खड़ा करने में उन्हें जो सिद्धहस्तता प्राप्त है, वह आज भी कितनी स्पृहणीय है, यह उनके होली और ऋतु वर्णन वाले कवित्तों को पढ़ने से ही पता चल सकता है। इसी से पद्माकर की कविताएँ बहुत अधिक कंठाग्र रहती हैं। उत्कृष्ट स्थलों में तो भाषा उस चित्र के पीछे दौड़ती चलती है और उसका सारा रूप विधान उस चित्र में रंग उभारता रहता है। पद्माकर को

बहुत व्यापक अनुभव प्राप्त था और बुन्देलखण्ड के अनेक राज दरबारों में रमने-घूमने के कारण उनमें एक तटस्थ वृत्ति भी विकसित हो गयी थी, जो कि सफल साहित्य-स्रष्टा के लिए नितांत अपेक्षित होती है। उनका अन्तःकरण बहुत ही भावाकुल था, इसी से गंगा, राम, कृष्ण और राधिका के प्रति उनकी उक्तियाँ भी सरसता और मर्म स्पर्शिता में उनकी अन्य शृङ्गारी उक्तियों से कम नहीं पड़तीं। हिम्मत बहादुर बिरदावली और जगद्विनोद में जो वीर रस के छन्द आये हैं, वे बहुत ही उत्साहवर्द्धक हैं। पर पद्माकर की प्रतिभा की असली पहचान उनके शब्दचित्रों में ही होती है, 'लला फिर आइयो खेलन होरी', 'कढ़िगो अबीर पै अहीर तो कढ़ै नहीं', 'तनक तनक तामैं खनकचुरीन की', 'एक करकंज एक कर देकिवार पै,' बोरत तो बौरयौ पै निचोरत बनै नहीं' जैसे चित्रों में ही उनकी काव्यात्यामा निखरी है और ऐसे चित्रों की उरेह में ही पद्माकर का कृतित्व सही माने में परिलक्षित हुआ है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में पद्माकर के इस सँवरे हुए काव्य-रूप का ही निदर्शन करने का प्रयत्न किया गया है और पद्माकर की उत्कृष्टतम प्रतिभा का ही आकलन इसमें किया गया है। पद्माकर के अध्ययन से आज भी कविता के शाश्वत गुणों का अनुसन्धान संभव है; क्योंकि कृती यदि अपने स्वरूप में ही अपनी कृति में उतर आये, तो उसकी देन शाश्वत महत्व की हो जाती है, तब वह देश और काल की सीमाओं के बंधन से मुक्त हो जाता है और उसका मूल्यांकन उसके युग की दृष्टि से नहीं किया जाता।

पद्माकर का ऐसा स्वयं में पूर्ण अध्ययन और संकलन प्रस्तुत करने के लिए श्री शुकदेव दुबे धन्यवाद के पात्र हैं।

लखनऊ;

विजयदशमी सं० २०१३ वि०

—विद्यानिवास मिश्र

# विषय-सूची

# जीवन-वृत्त एवं आलोचना

# जीवन-वृत्त एवं आलोचना

# रीतिकालीन परिस्थिति

## राजनीतिक

रीतिकाल ( संवत् १७००-१९०० ) के आरम्भ में विलास एवं वैभव की प्रतिमूर्ति मुगल-सम्राट शाहजहाँ शासक था, जिसके समय में राज्य का विस्तार भी तीव्र गति से हुआ और पतन के लक्षण भी दृष्टिगोचर होने लगे थे। उसके शासन-काल में मुगल-साम्राज्य की नींव अकबर के समय की तरह सुदृढ़ नहीं रह पायी। कई प्रदेशों में असन्तोष फैला हुआ था। भाई-भाई में झगड़ा था और इसी कारण उसके पुत्रों में उत्तराधिकार की लड़ाइयाँ हुई तथा औरंगजेब को अपनी कठोरता, कट्टर नीति एवं क्रूरता के कारण सफलता प्राप्त हुई। औरंगजेब ने मन्दिरों को तोड़ने, धर्म-परिवर्तन कराने एवं तीर्थ-स्थानों को भ्रष्ट करने में अपनी सारी शक्ति लगा दी। सम्राट् की इस नीति के फलस्वरूप लोगों में संगठन का भाव जागा। उनमें अराजकता फैल गई और देश के अधिकांश भाग में विद्रोह की आग भड़क उठी। गुरु गोविन्द सिंह तथा वन्दा वैरागी के नेतृत्व में सिखों ने मुगल-साम्राज्य को हिला दिया। जाटों ने अपनी स्वतंत्रता के लिए इनसे युद्ध पर युद्ध किये तथा राजपूत राजाओं ने भी इनके विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। केन्द्र से दूरस्थ शासकों एवं सूबेदारों ने अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी। धार्मिक असहिष्णुता और कट्टरता के कारण औरंगजेब को जीवन भर चैन नहीं ही मिला। उसके अयोग्य एवं निकम्मे उत्तराधिकारियों ने साम्राज्य का

अ त-सा कर दिया। जागीरदार, सामत और सभी कर्मचारी ऐसी अव्यवस्था स घबडा गय।

उस समय मराठों का जोर बढता गया और एक दिन आया, जब उन्होंने दिल्ली के मुगल बादशाह को अपना शाही कैदी बना पजाब को अपने अधिकार म कर लिया। ऐसे अवसर स लाभ उठाकर कूटनीति एव युद्ध-कला म अत्य त निपुण अग्रेजों ने भारत में पदार्पण किया और मराठों की पारस्परिक फूट का लाभ उठाकर अपनी शक्ति को भारत म सुदृढ बना लिया। रीतिकाल की समाप्ति क पूर्व क या कुमारी से गिल गिट तक और ब्रह्मपुत्र स सिन्धु तक सारा भारत अंग्रेजों के अधिकार म आ चुका था।

इस प्रकार स्पष्ट है कि रीतिकाल क प्रथम पचास वर्षों को छोडकर शेप समय म जन साधारण का जीवन अशान्त, अस्थिर एव अव्यवस्थित रहा।

## आर्थिक

यह सामंतवाद का युग था। दिल्ली क शासकों के प्रभुत्व क समाप्त हो जाने के पश्चात् सारा साम्राज्य सूबों या राज्यों म बँट गया था। इन राज्यों के अधिपति सुसम्पन्न और सुखी थे, जिनके ऊपर कोई दायित्व नहीं था। उनके पास खाने पीने एवं भोग विलास के लिए सभी साधन उपलब्ध थे। उनका अधिकाश समय रगमहलों मे भोग विलास करते ही व्यतीत होता था। अवध के नवाबों और जयपुर तथा मारवाड नरेशों का विलासपूर्ण जीवन इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। परन्तु साधारण जन की आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। क्रमागत उपद्रवों का परिणाम यह हुआ कि व्यापार नष्ट हो गये, कृषि चौपट हो गयी और बेकारी का बोलबाला हो

गया। सारे देश में ठगों, चोरों और डाकुओं का जोर फैल गया। फल यह हुआ कि जन-जीवन संकटपूर्ण और असुरक्षित था। विदेशियों ने नवीन पदों और नौकरियों को अपने हाथ में ही रखा, जिसका सीधा प्रभाव भारतीयों की आर्थिक अवस्था पर पड़ा।

इस समय कवियों का एक दल था, जो इन सामंतों के दरबार में रहता था। वे चैन के समय आश्रयदाताओं को समय-समय पर कविताएँ सुना-सुना कर एक-एक कविता पर सहस्रों रुपये पुरस्कार पाते थे और खतरे के समय परामर्श दिया करते थे। उन आश्रयदाताओं के विषयी एवं विलासी जीवन का प्रभाव इन कवियों पर भी पड़ा और उन्होंने कुछ फरमायशी रचनाएँ प्रस्तुत कीं। इसे यों कहा जा सकता है कि अब कविता स्वांत:सुखाय न होकर धनोपार्जन के लिए, भोग-विलास-सम्बन्धी आनन्द की परितुष्टि एवं प्रशस्ति के रूप में लिखी जाने लगी थी। अपनी बँधी वृत्तियों को छोड़ वे अपना काम नही चला सकते थे। अब ऐसा हो गया था कि किसी आश्रयदाता के बिना काव्य की लोनी लतिका खड़ी ही नहीं हो सकती थी। परन्तु सब कुछ होते हुए भी उन्होंने अपनी मुक्तानन्दी भावनाओं और असली काव्य-तत्वों को नहीं छोड़ा। उनमें आत्माभिमान बहुत ही अधिक था और इसी कारण वे किसी भी एक दरबार मे बराबर नहीं बने रहे।

## सामाजिक एवं सांस्कृतिक

इस काल की राजनीतिक अशान्ति के कारण सामाजिक स्थिति भी अत्यन्त शोचनीय हो गयी थी। हिन्दुओं और मुसलमानों में मेल-जोल बन्द सा रहा। उनमें एक दूसरे के विरोध की भावना प्रायः जागरूक रही। जाति-पाँति का भेद-

भाव था। शूद्रों के प्रति अस्पृश्यता की भावना प्रबल होने लगी थी। शिक्षा की दशा अत्यन्त दयनीय थी। मुगल शासन काल से चली आती पाठशालाएँ तथा मकतब बन्द हो चले। साधारण जनता के लिए अक्षर ज्ञान प्राप्त करना भी कठिन हो गया। अंग्रेजों के शासन के प्रारम्भ होते ही अङ्गरेजी की शिक्षा प्रारम्भ कर दी गयी, जिसका प्रभाव हमारे समाज, संस्कृति और आदर्शों पर पड़ा। मुगल काल की राज्याश्रित फारसी के बदले उर्दू को तो अदालती भाषा रखा गया, किन्तु राजकाज में हिन्दी को वही स्थान नहीं मिला।

जहाँ साधारण जनता को इतने सङ्कट एवं आपत्ति का सामना करना पड़ रहा था, वहाँ शाही परिवार के लोग बड़ी शान शौकत से रहते थे। विदेशी यात्रियों ने लिखा है कि शाही जनों के लिए प्रति वर्ष एक हजार बहुमूल्य वस्त्र बनाये जाते थे। रंगमहल में बेगमों का जमघट लगा रहता था और वे सिर से पैर तक हीरे जवाहिरात से लदी रहती थीं। इन की तीव्र गन्ध से गमगमाते हुए बहुमूल्य वस्त्र वे दिन में कई बार बदला करती थीं। मान-स्नान के ऊपर वे पानी की तरह पैसा बहाती थीं। कामिनी और कंचन के इस संयोग पर भला कादम्बिनी अलग कहाँ रह सकती थी। लोग ढेर ढेर कर पीते थे। रंगमहल में शतरंज, चौसर, गंजफा का जोर था। बाहर शिकार होते थे, पतंगबाजी होती थी, जानवरों और चिड़ियों की लड़ाइयाँ कराई जाती थीं। शाहजादों की शिक्षा का कोई समुचित प्रबन्ध नहीं था। परिणाम यह हुआ कि दिन पर दिन सभी निकम्मे होते गये और राज्य के विनाश में इन्होंने सक्रिय सहयोग दिया।

इन मुगल सम्राटों के विलासितापूर्ण जीवन का प्रभाव जागीरदार मानवों पर भी पड़ा और इन लोगों ने भी ऐसा

ही जीवन अपनाया। लोग भव्य भवनों में रहते थे और विलासिता के साथ आँखमिचौनी खेलते थे। सुरा-सुंदरी का छककर पान किया जाने लगा। भवन नर्तकियों के घुंघुरुओं से गूंजित होने लगा। उनके हाव-भाव एवं कटाक्षों से सामंतों के दिल बेकाबू रहने लगे।

मुगल-शासन के प्रारम्भिक दिन बड़े सुख-समृद्धि के थे। उस काल में प्रायः सभी दिशाओं—साहित्य, संगीत, चित्रकला, स्थापत्य-कला—में पर्याप्त उत्कर्ष हुआ। फारसी की लालित्यपूर्ण कविता का यही समय था। हिन्दी मे सूर और तुलसी इसी समय हिंदी-भाण्डार की अभिवृद्धि कर रहे थे। राम और कृष्ण के आदर्श लोगों को विभोर कर चुके थे। भक्ति-काल और रीति-काल की इस संधि-वेला में हिन्दी के कृष्ण-भक्त कवियों ने भक्ति-भावना से प्रेरित होकर श्रीकृष्ण और राधा के सौंदर्य का वर्णन किया, जिसमें भगवान् कृष्ण को ब्रह्म और गोपिकाओं को आत्मा के रूप में चित्रित किया गया है। इन वर्णनों में जीवन की अध्यात्मिक और धार्मिक भावनाएँ पायी जाती थीं और इनका जन-साधारण के जीवन से सम्बध था। ये तत्कालीन जनता के कवि थे। इन्होंने काव्य-शास्त्र को अपने सामने नहीं रखा—'कवित विवेक एक नहि मोरे, सत्य कहौं लिखि कागद कोरे'। फिर भी इनकी कविताएँ विश्व की श्रेष्ठतम कविताओं मे गिनी जाने लगीं।

परन्तु परिस्थितयों के साथ-साथ रीतिकालीन कवियों के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन स्वाभाविक था। उन्होंने कृष्ण-भक्त कवियों द्वारा प्रशस्त किये हुए मार्ग को तो अपनाया, परन्तु उनकी कविताओं मे कृष्ण एवं गोपियों की ओट मे लौकिक प्रेम ने स्थान पा लिया। अब कविता राज-दरबार, जमींदारों एवं रईसों की हो गयी। राज्याश्रित कवियों ने अपने आश्रय-

दावाओं की विलासमयी प्रवृत्तियों की शान्ति के निमित्त लौकिक प्रेम के विलासमय जीवन का विभिन्न रूपों में चित्र प्रस्तुत किया। उन्हें शृंगार रस में ऐसा डुबोया कि मना आने लगा। उनमें प्रेम की एकनिष्ठा नहीं विलास की रसिकता थी। इन रसिकों की दृष्टि प्राय शरीर-सौंदर्य पर ही अटकी रहती थी। नायिका की सुकुमारिता, कामिनी के कटि की क्षीणता, कुच की कठोरता, उसकी विरहाकुल उसासें, उसकी मद-भरी आंखें आदि उनके वर्ण्य विषय हो गये। नायिका-भेद की सूक्ष्मता को पहचानने में ही वे अपना गौरव समझने लगे। वास्तव में मादक झोंके, दुग्ध-सदृश धवल चाँदनी, सावन की कारी रात, रमणी की अधगोल गोरी-गोरी बाहें, कनक-सी कामिनी के अन्य अंग, उन्नत उरोजों की चका चौंध और उसी युग की भाषा में 'रईसाना ठाट बाट'—इन सबके अतिरिक्त जीवन और कहीं भी है, इस तथ्य की ओर तत्कालीन युग के साहित्यकारों की दृष्टि प्राय नहीं जा सकती थी। फिर भी उन्होंने अपने व्यक्तित्व को नहीं खोया। उन्होंने भाषा को गति दी, उक्ति वैचित्र्य को खुले हाथों बिखेरा, छन्द सौन्दर्य को उभारा, भावों को क्रमबद्ध किया, प्रकृति का सरस चित्रण प्रस्तुत किया। उन्होंने संस्कृत ग्रन्थों के आधार पर आचार्यत्व की प्रगति की आकांक्षा से लक्षण ग्रन्थों की रचना की। यह अवश्य है कि उन्होंने बहुत कम लम्बे वर्णनात्मक काव्यों के लिखने का प्रयास किया। इस काल का रूप मुक्तक काव्य का है। विषय हैं रस, अलकार, नायिका भेद, नायक नायिका के विलास और उनके अग प्रत्यग का वर्णन, प्रकृति चित्रण जिसमें शृंगार रस की प्रधानता है। संस्कृत और प्राकृत काव्य की जो परपरा रीतिकाल को उत्तराधिकार में मिली, वह भी एकान्त शृंगारिक थी।

इस काल में कविता की परख की कसौटी परिवर्तित हो गयी। अलंकारहीन कविता, कविता नहीं रह गयी। परिणाम यह हुआ है कि कवि कहलाने के लिए इसी परिपाटी में ग्रन्थ-रचना करना प्रायः अनिवार्य था। इसी फेर में पड़कर आचार्य केशवदास का काव्य 'रामचन्द्रिका' फुटकर छन्दों का संग्रह हो गयी। वीरगुण-गान एवं जातीय उत्थान की लगन वाले कवि महाकवि भूषण को रीति-ग्रन्थ लिखना पड़ा, भले ही वह वीर रस-सम्बंधित हो।

इस प्रकार काव्य-धारा का स्वच्छन्द प्रवाह रुककर रीति की नालियों से वहने लगा, जिसमें आकर्षण था, रस था, स्वाद था। शृङ्गारिकता की चरम सीमा की ओर अग्रसर होते हुए इस काल में भाषा-सौष्ठव, अलंकाकरिता एवं सरस वर्णन अत्यन्त सुन्दर वन पड़े।

'रीति-काव्य का रूप प्रायः सर्वत्र ही गार्हस्थिक है। इसका कारण यह है कि यह भारतीय शृङ्गार-परंपरा का ही स्वाभाविक विकास है। उस पर वाह्य प्रभाव थोड़ा-बहुत अवश्य पड़ा, परंतु उसके मूल तत्व सदा भारतीय ही रहे। किसी भी दशा में गार्हस्थिकता नष्ट नहीं हुई। इसी कारण रीति-कविता का शृङ्गार दरवारी प्रभाव में रहते हुए भी अपना सहज स्वरूप वनाये रहा। उसमें नागरिकता तो आयी, परन्तु दरवारी विलासिता और वाजारी हुस्न-परस्ती की वू नहीं आ पायी। रोमानी प्रेम की साहसकिता अथवा आदर्शवादी वलिदान-भावना भी प्रायः उसमें नहीं है।' इसी कारण यह दरवार के वाहर भी प्रिय हो सकी।

रीतिकालीन कवियों की भाषा शुद्ध और प्रांजल व्रजभाषा थी। परन्तु अवधी तथा मुसलमानी दरवार के प्रभाव से इसमें अनेक अन्य भाषाओं के शब्दों का भी मिश्रण हो चुका

था। ब्रजभाषा का यह जो साहित्यिक रूप निर्मित हुआ था, उसमें कोमलता, सुकुमारता एवं श्रुति-मधुरता बेजोड़ थी। यह तत्कालीन कवियों के प्रयास का ही फल था।

इस समय के कवियों ने अपने को कवित्त, सवैया, दोहा, बरवै आदि कुछ इने-गिने छन्दों तक ही सीमित रखा। उन्हें इसी में आशातीत सफलता मिली, जिसका परिणाम यह हुआ कि बाद में भी अधिकतर इन्हीं छन्दों में कविता होती रही। बिहारी ने दोहा छन्द को विकास की चरम सीमा तक पहुँचा दिया—'सतसैया के दोहरे, ज्यों नाविक के तीर', देव के कवित्त एवं मतिराम के सवैये गठन की दृष्टि से अद्वितीय हुए।

ऐसी ही परिस्थिति एवं इसी काल में कविकुल-भूषण महाकवि पद्माकर का प्रादुर्भाव हुआ था। इनकी रचनाओं में वर्ण्य विषय के अनुसार विविधता पायी जाती है, जिनके अनुप्रासों द्वारा सजीव और चेतन मूर्ति आँखों के समक्ष आ जाती है।

---

# जीवन-वृत्त

पद्माकर कवि के पूर्वज दाक्षिणात्य तैलंग ब्रह्मण थे। वे दक्षिण के मंगीपट्टन में रहते थे। संवत् १६१५ में जब गढ़-मांडले में महारानी दुर्गावती शासन करती थीं, उनका एक दल तीर्थाटन के विचार से उत्तर भारत में आया। यहाँ की सुविधाएँ देखकर वे धीरे-धीरे यहीं के निवासी हो गये। यह दल विशेष रूप से बाँदा, बुन्देलखण्ड एवं सागर में जाकर बसा। इसी वंश में एक प्रसिद्ध कवि एवं अनुष्ठाता पण्डित मोहनलाल भट्ट हुए, जो बाद में बाँदा से आकर मध्यप्रान्तान्तर्गत सागर में बस गये। यही पण्डित मोहनलाल जी कवि पद्माकर के पिता जी थे। पद्माकर का जन्म, संवत् १८१० में, सागर में ही हुआ था। 'पद्माकर' ने 'जगद्विनोद' तथा 'राम-रसायन' के अन्त में लिखा है --'इति श्री मथुरास्था मोहनलाल भट्टात्मज कवि पद्माकर विरचिते अमुक ग्रंथे अमुक प्रकरणम् समाप्तम्'। इससे बहुतेरे लोग इनका जन्म-स्थान मथुरा बतलाते हैं। परन्तु ऊपर के उल्लेख से स्पष्ट है कि मथुरा में श्री मोहनलाल भट्ट रहते थे, पद्माकर नहीं।

आचार्य केशवदास के समय से ही बुन्देलखण्ड ब्रजभाषा का एक केन्द्र हो चुका था। यही कारण है कि पद्माकर के पूर्वज ब्रजभाषा-काव्य की ओर झुके। पद्माकर के पितामह जनार्दन भट्ट ने भी ब्रजभाषा में काव्य-रचना की। इनके पिता मोहनलाल भट्ट संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित और कुशल कवि थे। कविता की अपेक्षा इनका अधिक सम्मान अनुष्ठान एवं मंत्र-सिद्धि के कारण हुआ। इसी कारण विभिन्न राजधानियों में उनकी पहुँच थी और इन्हें आदर प्राप्त था।

सन् १७३२ ईसवी में सागर का बहुत सा भाग पेशवाओं के अधिकार मे आ गया। बारह वर्ष के भीतर गढ़कोटे पर भी उनका स्वत्व हो गया। इन सब इलाकों की देख-रख के लिए गोविन्दराव नामक पण्डित नियुक्त किया गया। उसका निवास स्थान रानगिर था। बाद में उसने सागर में किला बनवाया और वहीं रहने लगा। कहते हैं, गोविन्दराव पण्डित पेशवा का रसोइया था। एक दिन बाजीराव का उपवास था, उन्हें कुछ खाना पीना नहीं था। गोविन्दराव ने कुछ बनाकर खा लेने के लिए राजा से आधी घडी की छुट्टी मागी। राजा ने आज्ञा दे दी, परन्तु यह देखना चाहा कि यह आधी घडी में कैसे निपट लेगा। गोविन्दराव नदी के किनारे गया और वहा एक मुर्दे को जलते देखा। चिता की ही आग मे उसने कुछ भून भांज कर अपना पेट भर लिया और आधे घटे मे आ उपस्थित हुआ। पेशवा यह देख बहुत प्रसन्न और चकित हुए तथा बोल उठे—"जो मनुष्य इतना कर सकता है, वह जो चाहे, सो कर सकता है। गोविन्दराव के भाग्य खुल गए। पेशवा ने उसे बढ़ाना प्रारम्भ कर दिया और उसे बुन्देलखण्ड मे अपना प्रतिनिधि नियुक्त कर दिया। अपने राज्य की सुरक्षा की दृष्टि से गोविन्दराव पण्डित सागर छोड कालपी रहने लगा। उसने आस पास के इलाके दमोह आदि पर अपना अधिकार जमा लिया। परन्तु सन् १७५६ मे वह पानीपत की लड़ाई में मारा गया। कहते हैं कि वह इतना मोटा था कि बिना दूसरे की सहायता के घोडे पर सवार नहीं हो सकता था। इसी कारण वह पानीपत से भाग नहीं पाया था।

गोविन्दराव के पश्चात् उसका लड़का बालाजी और उसके बाद उसके इकलौते पुत्र रघुनाथ राव उर्फ आबा (अप्पा) साहब उत्तराधिकारी हुए। इनके जमाने में मण्डला और जबलपुर

जिले भी पेशवा के अधिकार में आ गए। परन्तु १७६८ ईसवी में उन्होंने इन्हे नागपुर के राजा रघु जी भोंसला को दे डाला। अप्पा साहब बहुत ही उदार थे और विद्वानों का बहुत सत्कार किया करते थे। मोहनलाल भट्ट इनके दरबार में भी थे। बाद में वे पन्ना के महाराज-हिन्दूपति के गुरु हुए और दक्षिणा में कई गाँव प्राप्त किये। वहाँ से वे फिर जयपुर के महाराजा प्रतापसिंह ( सन् १७८८-१८०३ ) और सवाई जयसिह ( सन् १८०३-१८१८) के यहाँ रहे, जहाँ उन्हे कविराज शिरोमणि की पदवी और अच्छी जागीर मिली। अनुष्ठान और मंत्र सिद्ध के बल पर उन्होंने राजन्य वर्ग के बहुतेरे लोगों को शिष्य बनाया और दीक्षा की यह परम्परा आगे भी चलती रही।

पद्माकर को भी कवित्व शक्ति वंश-परम्परा से मिली। इन्हे अच्छी शिक्षा मिली थी और ये संस्कृत और प्राकृत के अच्छे ज्ञात थे। पिता की छाप लेकर साहित्यिक वातावरण मे पलने का आधार पा पमद्माकर की प्रतिभा के भी फूल खिलने लगे। उन्होंने भी राज्याश्रय ग्रहण किया और जीवन के अन्तिम दिनों तक किसी न किसी राज-दरबार मे सम्मानपूर्वक बने रहे। जहाँ कहीं भी ये गये, वहाँ इन्हें प्रचुर द्रव्य और अत्यधिक सम्मान मिला। परन्तु इतना अवश्य है कि ये जीवन भर भटकते ही रहे, कहीं स्थिर नही रह पाये। प्रारम्भ में ये सागर-नरेश रघुनाथ राव के दरबार में रहते थे। उनकी प्रशंसा में इन्होंने निम्न कविता सुनायी थी :—

> सम्पति सुमेर की कुबेर की जो पावै, ताहि
> तुरत लुटावत विलम्ब उर धारै ना।
> कहै 'पदमाकर' सुहेममय हाथिन के,
> हलके हजारन के वितरि बिचारै ना॥

गज-गजबक्स महीप रघुनाथ राव
याही गज धोखे कहूँ काहूँ देइ डारे ना।
याही डर गिरिजा गजानन को गोइ रही,
गिरि तें, गरे तें, निज गोद तें उतारे ना॥

कहते हैं, इस कविता पर मुग्ध होकर राना साहब ने इन्हें
एक लक्ष मुद्रा दी थी। इसी कारण यह कवित्त पद्माकर के
वशजों में 'लखिया' के नाम से विख्यात है। कुछ दिनों बाद
अप्पा साहब से इनकी अनबन हो गयी और ये अपने पिता के
निवास स्थान बादा में जाकर रहने लगे। वहा जाकर इन्होंने
मंत्र दीक्षा का पुश्तैनी कार्य प्रारम्भ किया क्योंकि कविता की
ही भाँति इन्होंने अपने पिता से मंत्र सिद्धि का भी अभ्यास
किया था। मोहनलाल भट्ट के बादा में पैदा होने तथा कुछ दिनों
तक उनके बादा में रहने के कारण ही शायद आचार्य रामचन्द्र
शुक्ल ने इनका जन्म स्थान बादा लिखा है, सागर नहीं। इनके
वशज अभी बादा जिलान्तर्गत दुरई नामक गाँव में रहते हैं।
दुरई की जागीर इन्हें बादा के नवाब से मिली थी।

उस समय बुन्देलखण्ड में जैतपुर नामक एक जागीर
थी। वहाँ के राना कुंवरपुर नामक गाँव में रहते थे। वह
गाँव अब सुगरा कहलाता है। सुगरा के जागीरदार के पुत्र
नोने अर्जुन सिंह बहुत ही योग्य थे। उनकी योग्यता बुंदेल
खण्ड भर में विख्यात थी। वे देश और जाति के प्रेमी थे,
सदा सच्चे स्वामि भक्त थे। वे साधुओं की सेवा किया करते
थे और एक साधु ने इन्हें वरदान भी दिया था। वे पहले
चरखारी के राजा खुमान सिंह के यहाँ सेनापति थे और बाद
में उनके भाई गुमान सिंह (बांदा के राना) के यहाँ विश्वासी
नौकर हो गये थे। इन्होंने रजधान के जागीरदार गोसाई
अनूप गिरि उपनाम हिम्मत बहादुर को हराकर यमुना के पार

भगा दिया था। कुछ दिनों बाद बाँदा के राजा गुमान सिंह और चरखारी के राजा खुमान सिंह के बीच अनबन हो गयी और दोनों में युद्ध छिड़ गया। उस युद्ध में नोने अर्जुन सिंह ने राजा खुमान सिंह को हराया। इसी युद्ध में राजा खुमान सिंह की मृत्यु भी हो गयी। संवत् १८४० में अर्जुन सिंह ने पन्ना के राजा की सेना से गठेवरा के बड़े युद्ध में भी विजय पायी थी। इस युद्ध में उनके शरीर में १८ घाव लगे थे। गुमान सिंह की मृत्यु के पश्चात् उनके नाबालिग पुत्र बखत सिंह को ले अर्जुन सिंह अजयगढ़ में रहने लगे। उसी समय बाँदा के नवाब अली बहादुर और हिम्मत बहादुर ने अजयगढ़ पर चढ़ाई की। इस युद्ध में अर्जुन सिंह मारे गये और हिम्मत बहादुर की विजय हुई। यह युद्ध संवत् १८४६, वैशाख वदी १२, बुद्धवार ( १८ अप्रैल, सन् १७६२ ) को हुआ था।

मंत्र-दीक्षा का कार्य करते समय पद्माकर ने सुगरा-निवासी नोने अर्जुन सिंह को भी अपना शिष्य बनाया था और एक लक्ष चण्डी-पाठ के अनुष्ठान द्वारा एक तलवार सिद्ध करके इन्हें दी थी। नोने अर्जुन सिंह ने, अपना ही नहीं, अपने कुल-मात्र का गुरु इन्हें बना लिया था। आज भी सुगरावाले पद्माकर के वंशजों से दीक्षा लेते हैं। बुन्देलखण्ड के राजाओं में सर्व-प्रथम नोने अर्जुन सिंह ने ही पद्माकर की कविता का आदर किया और इन्हे अपने यहाँ आश्रय दिया था। पद्माकर ने भी अपनी कविता द्वारा वीरवर अर्जुन सिंह का यशोगान किया। उनकी मृत्यु के सम्बंध में दो-एक छन्द पद्माकर के स्फुट संग्रहों में भी मिलते हैं :—

तुपक, तमंचे, तीर, तोरा, तरवारन तें,
काटि काटि सेना करी सोनित सितारे की।

गज-गज-बक्स महीप रघुनाथ राव,
याही गज धोखे कहूँ काहूँ देइ डारे ना।
याही डर गिरिजा गजानन को गोई रही,
गिरि तें, गरे तें, निज गोद तें उतारे ना॥

कहते हैं, इस कविता पर मुग्ध होकर राजा साहब ने इन्हें एक लक्ष मुद्रा दी थी। इसी कारण यह कवित्त पद्माकर के वंशजों में 'लखिया' के नाम से विख्यात है। कुछ दिनों बाद अप्पा साहब से इनकी अनबन हो गयी और ये अपने पिता के निवास स्थान बाँदा में जाकर रहने लगे वहाँ जाकर इन्होंने मंत्र दीक्षा का पुश्तैनी कार्य प्रारम्भ किया क्योंकि कविता की ही भाँति इन्होंने अपने पिता से मंत्र सिद्धि का भी अभ्यास किया था मोहनलाल भट्ट के बाँदा में पैदा होने तथा कुछ दिनों तक उनके बाँदा में रहने के कारण ही शायद आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इनका जन्म स्थान बाँदा लिखा है, सागर नहीं। इनके वंशज अभी बाँदा जिलान्तर्गत दुरई नामक गाँव में रहते हैं। दुरई की जागीर इन्हें बाँदा के नवाब से मिली थी।

उस समय बुन्देलखण्ड में जैतपुर नामक एक जागीर थी। वहाँ के राजा कुँवरपुर नामक गाँव में रहते थे। वह गाँव अब सुगरा कहलाता है। सुगरा के जागीरदार के पुत्र नोने अर्जुन सिंह बहुत ही योग्य थे। उनकी योग्यता बुन्देलखण्ड भर में विख्यात थी। वे देश और जाति के प्रेमी थे, सदा सच्चे स्वामि भक्त थे। वे साधुओं की सेवा किया करते थे और एक साधु ने इन्हें वरदान भी दिया था। वे पहले चरखारी के राजा खुमान सिंह के यहाँ सेनापति थे और बाद में उनके भाई गुमान सिंह (बाँदा के राजा) के यहाँ विश्वासी नौकर हो गये थे। इन्होंने रनधान के जागीरदार गोसाईं अनूप गिरि उपनाम हिम्मत बहादुर को हराकर यमुना के पार

भगा दिया था। कुछ दिनों बाद बाँदा के राजा गुमान सिंह और चरखारी के राजा खुमान सिंह के बीच अनबन हो गयी और दोनों में युद्ध छिड़ गया। उस युद्ध में नोने अर्जुन सिंह ने राजा खुमान सिंह को हराया। इसी युद्ध में राजा खुमान सिंह की मृत्यु भी हो गयी। संवत् १८४० में अर्जुन सिंह ने पन्ना के राजा की सेना से गठेवरा के बड़े युद्ध में भी विजय पायी थी। इस युद्ध में उनके शरीर में १८ घाव लगे थे। गुमान सिंह की मृत्यु के पश्चात् उनके नाबालिग पुत्र बखत सिंह को ले अर्जुन सिंह अजयगढ़ में रहने लगे। उसी समय बाँदा के नवाब अली बहादुर और हिम्मत बहादुर ने अजयगढ़ पर चढ़ाई की। इस युद्ध में अर्जुन सिंह मारे गये और हिम्मत बहादुर की विजय हुई। यह युद्ध संवत् १८४६, वैशाख वदी १२, बुद्धवार ( १८ अप्रैल, सन् १७६२ ) को हुआ था।

मंत्र-दीक्षा का कार्य करते समय पद्माकर ने सुगरा-निवासी नोने अर्जुन सिंह को भी अपना शिष्य बनाया था और एक लक्ष चण्डी-पाठ के अनुष्ठान द्वारा एक तलवार सिद्ध करके इन्हें दी थी। नोने अर्जुन सिंह ने, अपना ही नहीं, अपने कुल-मात्र का गुरु इन्हें बना लिया था। आज भी सुगरावाले पद्माकर के वंशजों से दीक्षा लेते हैं। बुन्देलखण्ड के राजाओं में सर्व-प्रथम नोने अर्जुन सिंह ने ही पद्माकर की कविता का आदर किया और इन्हे अपने यहाँ आश्रय दिया था। पद्माकर ने भी अपनी कविता द्वारा वीरवर अर्जुन सिंह का यशोगान किया। उनकी मृत्यु के सम्बंध में दो-एक छन्द पद्माकर के स्फुट संग्रहों में भी मिलते हैं :—

तुपक, तमचे, तीर, तोरा, तरवारन तें,
काटि काटि सेना करी सोचित सितारे की।

कहै 'पदमाकर' महावत के गिरे कूदि,
किलकि किलाएँ आयो गज मतवारे की ॥
हेरन, हँसन, हरसन, सान घन वह,
जूझन पँवार वीर अर्जुन मारे की।
जग में न याका कर्‌यो, सुरन में साका जिहि,
ताका ब्रह्मलोक को पताका लै पँवारे की ॥
सूर-कुल नूर दै कै भू सुरनि दान दै कै,
मान दै कै वीरा, दुर्रा सिर पै सपूती को।
मास मँसहारन अहारन अघाय,
तरवार तन ताय दयो मुक्त रनदूती को ॥
ओप दै के जोगिनिन भोग दै बरंगनान,
मुण्ड दै कै पारबतीपति मजबूती को।
मार दै आरिन अर्जुन अरजुन सिंह,
गयो देवलोक ओर दै कै रजपूती को ॥

ये कवित्त अर्जुन सिंह की मृत्यु पर पद्‌माकर ने तब लिखे थे, जब ये युद्ध में हिम्मत बहादुर की ओर थे। वीर की प्रशंसा करने में ये कैसे चूक सकते थ।

सुगरा से पद्‌माकर दतिया नरेश महाराज पारीछत के दरबार में पहुँचे। वहाँ भी इन्होंने प्रशस्तियाँ लिखीं। निम्न लिखित कवित्त पर इन्हें जागीर मिली थी —

चार-तप कै चुका सु लै चुरा सकल सिधि,
दै चुका चुनौती चित्त चिंतन के नाम को।
कहै 'पदमाकर' महेस-मुख बाय चुका,
टोय चुको सुखद सुमेर अभिराम को ॥
भूप मनि पारीछत रावरो सुजस गाय
ल्याय चुको इन्दिरा उमंगि निज धाम को।

ध्याय चुको धनद कमाय चुको काम-तरु,
पाय चुको पारस रिझाय चुको राम को ॥

इसी समय रजधान के गोसाईं अनूप गिरि उपनाम हिम्मत वहादुर थे, जो पहले वांदा के नवाव अली वहादुर के यहाँ रहते थे। वे वड़े अच्छे योद्धा थे। वाद में वे अवध के नवाव शुजाउद्दौला के यहाँ सेना के वड़े अधिकारी हो गये थे। रजधान का इलाका उन्हें नवाव ने फौज के लिए दिया था और वे रजधान के जागीरदार थे। वे स्वयं भी कवि थे और कवियों का आदर भी किया करते थे। पद्माकर दतिया से होकर संवत् १८४६ में हिम्मत वहादुर के यहाँ गये। उसी समय नोने अर्जुन सिंह और हिम्मत वहादुर के वीच युद्ध हुआ था, जिसमें अर्जुन सिंह हार गये थे और मारे भी गये थे। उस समय पद्माकर ने सर्वप्रथम हिम्मत वहादुर की समर-भूमि की वीरता और पराक्रमपूर्ण कार्य की प्रशस्ति गाते हुए "हिम्मत बहादुर विरदावली" नामक एक प्रसिद्ध वीर-काव्य लिखा था। आगे प्रशस्ति के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं :—

तीखे तेग वाही औ सिलाही चढ़ै घोड़न पै,
स्याही चढ़ै अमित अरिदन की ऐल पै।
कहै 'पदमाकर' निसान चढ़ै हाथिन पै,
धूरिधार चढ़ै पाकसासन के सैल पै ॥
साजि चतुरंग चमू जंग जीतिवे के लिए,
हिम्मत वहादुर चढ़ो जो फर-फैल पै।
लाली चढ़ै मुख पै, वहाली चढ़ै वाहन पै,
काली चढ़ै सिंह पै, कपाली-चढ़ै वैल पै ॥

ठाकुर कवि इनके समकालीन थे। हिम्मत वहादुर के दरवार में ठाकुर के समक्ष उनकी कविता के सम्वंध में पद्माकर से पूछा गया। इन्होंने स्पष्ट वता दिया—"कविता अच्छी और भावमय

कहै 'पद्माकर' प्रताप सिंह महाराज,
ऐसी कछु गालिब गुनाहिन पै हेरो है ॥
चक हू तें चिल्लिन तें प्रलै की बिजुल्लिन तें,
जम-तुल्य जिल्लिन तें जगत उजेरो है।
काल तें कराल त्यों कहर काल कालहू तें,
गाज तें गजब्ब त्यों अजब्ब कोर तेरो है ॥

महाराजा प्रताप सिंह के हाथियों के वर्णन में भी इन्होंने कविता लिखी। नीचे एक कविता दी जाती है —

दप्पे की टकोर टक्करन की तड़ातड़ित,
माचै जब कूरम करिन्दों की लड़ालड़ी।
कहै 'पद्माकर' झपट की झड़ाझड़ में,
मुण्डों की दड़ादड़ सुण्डों की भड़ाभड़ी ॥
मस्ती की भड़ाभड़ जड़ाजड़ जँजीरन की,
परा की पड़ापड़ गजों का गड़ागड़ी।
धक्कों की धड़ाधड़ अड़न की अड़ाअड़ में,
है रह खड़ाखड़ सुदन्तों की कड़ाकड़ी ॥

इन्होंने उनकी मृत्यु पर भी कविता लिखी थी —

गाउँ-गज-बाजि दै दराज कबिराजन,
पटैल दै पराभव, फतूहन फलै गये।
कहै 'पद्माकर' अभै दै राज-रैयत को,
मित्रन को मत्र दै न काहू सों छलै गये ॥
साहिब सवाई सुत सम्पति समाज साज,
जगत नरि दै निज नदै दै मलै गये।
बास बयकुंठ करिबे को श्रीप्रताप,
पाकसासन के आसन पै पाँव दै चले गये ॥

महाराज प्रताप सिंह के यहाँ रहते हुए ही ये उनके साथ एक बार सावन में काशी गये। उस समय मेला लगा हुआ

था। मेले में कुछ स्त्रियाँ गीत गाती हुई जा रही थीं और कुछ बनारसी मनचले उनके ऊपर छींटाकसी करते हुए जा रहे थे। महाराज मनचलों की उक्तियाँ नहीं समझते थे। उन्होंने पद्माकर से मनचलों के बोल 'रंग है री रंग' का स्पष्ट अर्थ पूछा। उसको पूर्ति इन्होंने ऐसे सुन्दर ढंग से की कि महाराज इनकी उक्ति पर मुग्ध हो गये और तुरन्त इन्हें एक सहस्र स्वर्ण मुद्रा पारितोपिक रूप में देने का आदेश दिया। काशी-जैसे स्थान में दान स्वीकार करना पद्माकर हेय समझते थे, परन्तु महाराज के विशेष आग्रह पर उसे इन्हें स्वीकार करना ही पड़ा; लेकिन इन्होंने उस राशि में कई सौ स्वर्ण मुद्राएँ अपने पास से मिलवा-कर उसे पण्डितों में बँटवा दिया।

महाराज ने जयपुर में एक बार सावन के झूले को याद कर 'सावन मे झूलिबो सुहावनो लगत है' और दरबार में बांसुरीवाले की बांसुरी सुनकर 'बाँसुरी बजत आँख आँसुरी ढरक परे' समस्याएँ दी थीं, जिनकी पूर्तियाँ पद्माकर द्वारा सुनकर सभी अत्यन्त प्रसन्न हुए थे।

प्रताप सिंह की मृत्यु के उपरान्त ये बांदा लौट आये और सम्भवतः इसी बीच इन्होंने 'पद्माभरण' नामक उदाहरण-सहित अलंकार-ग्रन्थ की रचना की, क्योंकि उसके उदाहरणों में भी किसी नरेश या सामन्त का उल्लेख नहीं मिलता। इस पुस्तक की रचना दोहों में हुई है तथा इसमें विपय का निर्वाह समुचित एवं प्रशंसनीय ढंग से हुआ है।

कुछ दिनों बाद ये पुनः जयपुर आये। उस समय महाराज प्रताप सिंह के सुपुत्र जगत सिंह राजा थे। उन्हें कविता से विशेप प्रेम था, परन्तु राज-भोग में व्यस्त रहने के कारण उनसे किसी का मिलना बड़ा कठिन था। पद्माकर ने उनसे मिलने की एक अद्भुत युक्ति निकाली।

जगत सिंह अपने गुरु से कुछ कविता करने का भी अभ्यास किया करते थे। एक दिन उनके गुरु एक समस्या पूर्ति में बहुत देर से उलझे हुए थे। इन्होंने किसी प्रकार समस्या का पता लगा लिया और उसकी पूर्ति की। समस्या पूर्ति लेकर ये दरबार में पहुँचे और उसे पढ़ा —

संभु के अंबर माँहि काहे का सुरेस राजे,
गायी जाति रागिनी सु कौन सुरमन्द्रमा।
देत छबि को है कोकनद में नदी में कहो,
नखत बिराजै कौन निधि में अतद्रमा॥
एक दृग को है कौन बनन असंभवित,
घटै बढ़ै सो तो दिन पाय पाय चन्द्रमा।
काली जी के कज्जल की ललित लुनाई सो तो,
सारे नभमण्डल में भारगव चन्द्रमा॥

'सारे नभमण्डल में भारगव चन्द्रमा' समस्या थी। समस्या पूर्ति सुनकर महाराजा अवाक् रह गये और इनका परिचय पूछा। इन्होंने अपने को पद्माकर का सईस बतलाया और दूसरे दिन अपने स्वामी को वहाँ उपस्थित करने का वादा किया। दूसरे दिन राज सभा में पहुँचकर इन्होंने निम्नलिखित कवित्त अपने परिचय में पढ़ा —

भट्ट तिलगाने को बुंदेलखण्ड वासी कवि,
सुजस प्रकासी 'पद्माकर' सुनामा हौं।
जोरत कवित्त, छंद, छप्पय अनेक भाँति,
संस्कृत प्राकृत पढ़े जु गुनग्रामा हौं॥
हय रथ पालकी गयंद गृह ग्राम चारु,
आखर लगाय लेत लाखन की सामा हौं।
मेरे जान मेरे तुम कान्ह हौ जगत सिंह,
तेरे जान तेरो वह विप्र हौं सुदामा हौं॥

जगत सिंह उनकी प्रतिभा देखकर बड़े प्रभावित हुए और इन्हें अपने दरबार में राज-कवि बनाकर रख लिया। जगत सिंह की सुखद छत्र-छाया मे इन्होंने कई वर्ष व्यतीत किये। जयपुर में इनके जीवन का अधिकांश समय व्यतीत हुआ। इन्होंने जगत सिह का उनके घोड़ों का, तीतर-बटेरों, का लड़ाइयों का वर्णन किया तथा उनकी प्रशस्ति में भी कितने ही छन्द लिखे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में "यहां रहकर इन्होंने रसिकों के गले का कण्ठहार 'जागद्विनोद' की रचना इन्हीं महाराज जगत सिह के नाम पर की थी।" 'जगद्विप्रोद' इनका श्रेष्ठतम ग्रंथ है, जिसमें भिन्न-भिन्न भावों एवं रसों की विवेचना और वर्णन अद्भुत तथा सुंदर बन पड़ा हैं। इसके टक्कर का केवल एक ही दूसरा ग्रन्थ मतिराम का 'रसराज है। 'जगद्विनोद' एक नायिका-भेद का ग्रन्थ है। इसके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं :—

किंकिनी छोरि छपायी कहूं कहूं बाजनी पायल पॉय ते नाईं।
त्यो 'पदमाकर' पातहु के खरके कहूँ कॉपि उठै छवि छाई॥
लाजहिं ते गडि जाति कहूँ अडि जाति कहूँ गज की गति भाई।
प्रेम की थोरी किसोरी हरें-हरें या विधि नन्दकिसोर पै आई॥

(मुग्धा अभिसारिका)

ईस की दुहराई सीस-फूल तें लटकि लट,
लट ते लटकि लट कन्ध पै ठहरि गो।
कहै 'पदमाकर' सुमन्द चलि कन्ध हूँ तें,
भ्रमि-भ्रमि भार्यो-सी भुजा में त्यो भमरि गो॥
भार्यो-सी भुजा ते भ्रमि आओ गोरी-गोरी बॉह,
गोरी बॉह हू तें चपि चूरिन में अरि गो॥

हेर्‌यो हर -हरैं हरी चूरिन तें चाह्यो की लौं,
तौं लौं मन मेरो दौरि तेरे हाथ परि गो ॥
(परकीया स्वाधीनपति का)

जगत सिंह की प्रशस्ति के छन्द देखें —

प्रबल प्रताप-कुल दीपक छता पे पुत्र,
पालक पिता पे राम राजा ज्यों भगतराज ।
का ह अवतार मैरो वारिधि मथन काज,
साल के सहाज बली विक्रम तखतराज ॥
म्लेच्छ अन्धकार मेटबे को मारतण्ड दिन,
दूलह दुनी के हिन्दु वन के नखतराज ।
पारथ से पथ से परीछित पुरन्दर से
आदी से अजाति से जनक-से जगत से ॥
आप जगदीश्वर हैं जग में विराजमान,
हौं हूँ तो कवीश्वर हैं राजते रहत हौं ।
कहै 'पद्माकर' ज्यों जोरत सुजस आप,
त्यों हूँ त्यों तिहारो जस जोरि उमहत हौं ॥
श्रीजगतसिंह महाराज मान सिंहावत,
बात यह साँची कछू काची ना कहत हौं ।
आप ज्यों चहत मेरी कविता दराज,
त्यों मैं उमिरिदराज ! रावरी चहत हौं ॥

स्वर्गीय लाला भगवान दीन ने लिखा है कि इस ग्रन्थ पर कवि को बारह हाथी, बारह ग्राम तथा बारह लाख मुद्राएँ मिली थीं। उन्हीं के शब्दों में सब मिलाकर पद्माकर को छप्पन गाँव, छप्पन हाथी और छप्पन लाख रुपये विभिन्न राजाओं से मिले थे।' ये जहाँ कहीं भी जाते, बड़े ठाट बाट से जाते थे। बड़े लाव-लश्कर के साथ ये बाहर निकलते थे। इनके साथ एक बड़ा दल होता, जिसमें कई हाथी, ऊँट, घोड़े, रथ और

मनोरंजन की सामग्री—दो-चार वेश्याएँ भी रहती थीं। एक बार ये पूरे लाव-लश्कर के साथ जयपुर से बाँदा जा रहे थे। रास्ते में बूँदीवालों ने समझा कि कोई राजा आक्रमण करने आ रहा है। उनका भ्रम दूर करने के लिए इन्होंने निम्न कवित्त सुनाया :—

सूरत के साह कहै कोऊ नरनाह कहै,
कोऊ कहै मालिक ये मुलुक दराज के।
राव कहै कोऊ उमराव पुनि कोऊ कहै,
कोऊ कहै साहिब ये सुखद समाज के॥
देखि असबाब मेरो भरमैं नरिन्द सबै,
तिनसो कहे मैं बैन सत्य सिरताज के।
नाम 'पदमाकर' डराउ मत कोऊ भैया,
हम कविराज हैं प्रताप महाराज के॥

इनकी प्रतिभा से प्रभावित हो बूँदी-नरेश ने इनका बड़ा सत्कार किया था और इन्हें अपने यहाँ रुकने को विवश किया था। मार्ग में बूँदी के राजभवन में कुछ दिन बिताकर ये बाँदा लौट आये।

पद्माकर ने जयपुर से उदयपुर की यात्रा की, जहाँ के राणा महाराज भीम सिंह ने मुक्त हृदय से इनका स्वागत किया। चैत्र शुक्ल चतुर्दशी को गनगौर में लगनेवाले मेले के अवसर पर ये वहाँ गये थे। मेले पर इन्होंने कई छन्द लिखे थे।

इसके पश्चात् ये अपनी कीर्ति के पोशक ग्वालियर के महाराज दौलत राव सिन्धिया के यहाँ गये। महाराज सिन्धिया की स्मृति के लिए इन्होंने 'आलीजाह-प्रकाश' नामक ग्रन्थ की रचना की। यह नायिका-भेद का ग्रन्थ है, और 'जगद्विनोद' से मिलता-जुलता है। इसमें अधिकांश छन्द उन्हीं शब्दों में और कहीं-

कहीं थोड़े शब्दान्तर से रखे गये हैं। 'आलीजाह प्रकाश' का एक उदाहरण देखें —

> मानिव सी चातुरी सरापति-सी लंक अरु,
> आपति-सा पारति महा अजानपन में।
> कहै 'पदमाकर' सुओप दरसावति-सी,
> त्यावतिसी नैसुक उँचाई उरोजन में॥
> लाज सा बुलावति-सी सखिन रिझावति सी,
> नावति-सी प्रीत अति प्रीतम के मन में।
> आखिन अखीठति-सी दीसति सी मन्द-मन्द,
> आवति चली यो तरुनाई हिय तन में॥
> ( मुग्धा नायिका )

पद्माकर की इसी पुस्तक में रचना काल दिया हुआ है —

> निधि दुगुन करि जानि, तत पर अठहत्तर अधिक।
> विक्रम सो पहिचानि, सावन सुदि इन्दु अष्टमी॥

ग्रन्थ का उपसंहार इस प्रकार हुआ है —

> दौलत नृप के हुकुम तें आली अतिहि हुलास।
> कवि 'पदमाकर' ही कियो आलीजाह प्रकास॥

इससे स्पष्ट होता है कि 'आलीजाह प्रकाश' की रचना संवत् १८७८ में हुई। सिन्धिया दरबार के ही एक मुसाहिब ऊदो जी नामक ब्राह्मण के कहने पर इन्होंने सम्कृत के हितोपदेश का गद्य पद्यात्मक अनुवाद भी किया था।

दौलत राव की प्रशंसा में इन्होंने निम्नलिखित कवित्त पढ़ा था —

> सीनागढ़ बम्बई सुमन्द करि मन्दराज,
> बन्दर को बन्द करि बन्दर बसावै गो।
> कहै 'पदमाकर' कसा के कासमीर हू को,
> पिंजर सो घेरि कै कलिंजर छुड़ावै गो॥

बाँका नृप दौलत अलीजा महाराज कबौं,
साजि दल दपटि फिरगिनि दबावै गो।
दिल्ली दहपट्टि पटना हू को झपट्टि करि,
कबहुँक लत्ता कलकत्ता को उड़ावै गो।।

कहते हैं, जयपुर-निवास-काल में ही पद्‌माकर के शरीर में श्वेत कुष्ट हो गया था। इसी समय इन्होंने 'प्रबोध पचासा' की रचना की। यह विराग एवं भक्ति से पूर्ण रचनाओं का एक लघु संग्रह है। भगवान्‌ के शरण जाने से इनका रोग कुछ दबा, परन्तु ये नीरोग नहीं हो पाये। संवत्‌ १८८४ में चरखारी की गद्दी पर महाराज रतन सिंह बैठे। जीवन की सान्ध्य वेला में उनसे मिलने ये चरखारी पहुँचे। परन्तु सोनारिन के साथ इनके अवैध संबंध की पूर्व सूचना होने के कारण उन्होंने इनसे भेंट करना अस्वीकार कर दिया। इस अपमान से पद्‌माकर को बहुत आघात पहुँचा और इन्होंने भविष्य में किसी भी राजा-राव से न मिलने का निश्चय कर लिया। उसी समय इन्होंने निम्न-लिखित कवित्त लिखकर राजा साहब के पास भिजवा दिया।

तुम गढ़ किल्ला सदा जोर करि जीतत हो,
पिंगल अमरकोष जीतत जहाज हैं।
तुम सदा सामदाम दण्ड भेद न्याय करो,
चारो वेद हमहूँ सुनावत समाज हैं।।
हाथी घोड़े रथ ऊट पैदल तुम्हारे साथ
राखत सदा ही हम छप्पै छन्द साज है।
तुम सों औ हम सों बराबरि को दावा गिनौ,
तुम महाराज हो तो हम कबिराज हैं।।

इस पर महाराजा की आँखे खुलीं और उन्होंने पद्‌माकर से

क्षमा माँगी, परन्तु ये उनके यहाँ नहीं ही गये। वहाँ से ये घ
भी नहीं लौटे, बल्कि ये सब गंगा की शरण में जाने का निश्चय
कर कानपुर के लिए चल पड़े, जिसकी शरण में सभी अंत में
जाते हैं। कहा जाता है कि रास्ते में ही इन्होंने 'गंगा लहरी' की
रचना की। उसके प्रारंभ में वन्दना, बीच में सम्मुख उपस्थित
हो गंगा-वर्णन और अंत में रोग मुक्ति की चर्चा है। अपने को
पापियों की कोटि में रखकर उबारने की प्रार्थना उसमें की गयी
है। गंगा वर्णन का छन्द देखें —

विधि के कमण्डल की सिद्धि है प्रसिद्धि यही,
हरि पद-पंकज प्रताप की लहर है।
कहै 'पद्माकर' गिरीश शीश-मण्डल के,
मुण्डन की माल ततकाल अघहर है॥
भूपति भगीरथ के रथ की सुपथ पथ
जन्हु जप जोग फल फैल की फहर है।
छेम की छहर गंगा रावरी लहर,
कलिकाल को कहर, जमजाल को जहर है॥

कानपुर में पतित पावनी गंगा का सेवन करते करते पद्मा
कर रोग मुक्त तो हो गये, परन्तु अच्छा होकर भी ये अधिक
दिनों तक जीवित नहीं रह सके। नीरोग होने के छः मास बाद
ही अस्सी वर्ष की अवस्था में संवत् १८९० में इनका देहावसान
हो गया। इनका अंतिम समय बड़ा दुःसमय व्यतीत हुआ।
ऐसा इनकी कुछ रचनाओं, विशेषकर 'प्रबोध पचासा' की
कविताओं से स्पष्ट होता है।

———

# ग्रन्थ-परिचय

पद्माकर के निम्नलिखित ग्रन्थ हैं :—

(१) हिम्मत बहादुर विरदावली, (२) पद्माभरण, (३) जगद्विनोद, (४) आलीजाह-प्रकाश. (५) प्रबोध-पचासा, (६) हितोपदेश, और (७) गंगा लहरी। 'राम-रसायन' के इनकी रचना होने में लोगों के मतभेद है। इसमें वाल्मीकि रामायण के प्रथम तीन काण्डों के अनुवाद है।

हिम्मत बहादुर विरदावली—सं० १८२० में लखनऊ के नवाब शुजाउद्दौला और ईस्ट इंडिया कम्पनी के बीच युद्ध हुआ। नवाब की सेना में कुलपहाड़ के सनाढ्य ब्राह्मण वंशी अनूपगिरि नौकर थे। यद्यपि उस युद्ध में नवाब की हार हो गयी, फिर भी नवाब ने उनकी सेवाओं से प्रसन्न हो उन्हें रजधान की जागीर और 'हिम्मत बहादुर' की उपाधि दी। पद्माकर सं० १८४६ में हिम्मत बहादुर के यहाँ आ गये थे और उसी समय अजयगढ़ के नोने अर्जुन सिंह पँवार से उनका घोर युद्ध हो गया। पद्माकर ने उस युद्ध को अपनी आँखों देखा और उस युद्ध का वर्णन करते हुए यह पुस्तक रजधान के गोसाईं अनूप गिरि उपनाम हिम्मत बहादुर को नायक बनाकर लिखी गयी है। यह दो सो बारह छन्दों का एक वीर-काव्य है, जो पांच अंशों मे विभक्त है। प्रत्येक के अन्त में एक हरि गीति का छन्द है। पहले अंश में हिम्मत बहादुर की विजय के लिए भगवान् श्रीकृष्ण से प्रार्थना की गयी है। दूसरे अंश मे नायक की गूजरों पर विजय महाराज छत्रसाल द्वारा संस्थापित राज्यों पर अधिकार, नोने अर्जुन सिंह पर चढ़ाई तथा सेना का वर्णन

पाया जाता है। तीसरे चौथे अंश मे युद्ध का तथा पाँचवें अंश मे नोने अर्जुन सिंह के मारे जाने का वर्णन किया गया है।

यह ग्रन्थ वीर-काव्यकार केशव तथा सूदन के वीर काव्यों की तुलना म ठीक ही है, पर तु स्वतन्त्र रूप से इसकी गणना उच्च कोटि के काव्यों में नहीं की जा सकती। यह है तो प्रबंध काव्य, परंतु प्रबंध काव्य के गुण इसमें नहीं है। इसमे शब्दों का आडम्बर है, संयुक्ताक्षरों का जमघट है। हाँ, इतना अवश्य है कि पद्माकर ने इसमे तत्कालीन परम्परा का निर्वाह किया है।

रीतिकालीन कवि मुक्तक रचना में मँजे हुये थे और प्रबंध-काव्य की रचना म सिद्धहस्त नहीं थे। मुक्तक रचना म मँजी हुई वाणी प्रबंध के क्षेत्र म आकर टेढ़ी-मेढ़ी ईंटों का ही महल खड़ा करती नजर आती है, उसम वह प्रतिभा नहीं दिखायी पड़ती, जो महल को गठा हुआ और मनोहर बना सके, तत्कालीन परिस्थिति ही ऐसी थी कि कवि लोग अधिक समय एक एक स्थान पर टिककर चिंतन-मनन करके शास्त्र कथित बातों का समावेश अपनी रचनाओं में नहीं कर सकते थे।

इसके अतिरिक्त बात यह भी है कि प्रबंध रचना मे केवल रस सामग्री का एकत्र हो जाना ही पर्याप्त नहीं है, उसम प्रवाह का भी ध्यान रखना पड़ता है। रस संचार क लिए भी सबसे आवश्यक वस्तु है आलंबन। यहा आलंबन उपयुक्त न होगा, वहाँ रस का एक बिंदु भी नहीं निकल सकता। इसके लिए आवश्यक है कि आलंबन कोई इतिहास प्रसिद्ध पुरुष हो, जिसके प्रति पाठकों क हृदय मे पहले से ही स्थान बना हो। 'राम चंद्रिका' प्रबंध-काव्य की दृष्टि स एक असफल रचना है, परंतु उसमें पाठकों की वृत्ति रम जाती है, क्योंकि इसके नायक क प्रति लोगों की मनोवृत्ति पहले म ही बँधी हुई है। हाँ, किसी काव्य में केवल शास्त्र कथित बातों का पालन ही यथेष्ट नहीं होता।

शास्त्रीय परिपाटी तो केवल इसीलिए आवश्यक है कि काव्य के उद्देश्य की पूर्ति हो। शास्त्रकारों ने भी काव्य का उद्देश्य 'रसाभिव्यक्ति' ही माना है।'

हिम्मत बहादुर बिरदावली का नायक कोई ऐसा ऐतिहासिक अथवा वीर पुरुष नहीं है, जिसमें पाठकों की वृत्ति रमती हो। इसके अतिरिक्त इसके वर्णन में भी कोई विशेषता नहीं है। सूची गिनाने वाली भद्दी प्रवृत्ति स्थान-स्थान पर लक्षित होती है। अर्जुन सिंह के सहायकों का नाम गिनाते समय राजपूतो के छत्तीस गुणों का नाम बताया गया है। तलवारों के प्रसंग में बाँदरी सूरती, लीलम आदि कई नाम तथा तोपों के प्रसंग में बहुतेरे नाम गिनाये गये हैं। इससे रस-भंग होता है, भावों ट्रेक नहीं। इसके वर्णन जमे हुए नहीं है; वे स्फुट संग्रह-मात्र रह गये हैं। कहीं-कहीं इतिहास-विरुद्ध बातें, वीरों में संसार की असारता का स्वरूप दिखाने वाले एवं जी को उबाने वाले लम्बे भाषण आये हैं, जो काव्य के सौन्दर्य पर आघात ही पहुँचाते हैं, निखार नही लाते। ऐसा पद्माकर ने भूषण आदि कवियों की देखा-देखी परम्परा निभाने के लिए किया होगा। परन्तु इन्हें इतिहास और अवसर का खयाल तो रखना ही चाहिए था।

कुछ आलोचकों ने 'हिम्मत बहादुर बिरदावली' को हिन्दी का तत्कालीन सर्वोत्तम काव्य तक कह डाला है, परन्तु हम उसमें कोई भी ऐसी बात नहीं पाते, जिससे उसे सफल काव्य तक कहा जा सके।

---

पद्माभरण—यह एक अलंकार-ग्रंथ है, जिसके लक्षण संस्कृत

'संधिसंध्यङ्गघटनं रसाभिव्यक्त्मपेक्षया।
न तु केवलया शास्त्रस्थितिसम्पादनेच्छया॥

—ध्वन्यालोक

के 'चंद्रालोक' के आधार पर और उदाहरण पद्माकर के हैं। यह चंद्रालोक का अनुवाद नहीं है। इतना अवश्य है कि आवश्यकता पड़ने पर कहीं कहीं चंद्रालोक और उसके अलंकार प्रकरण की टीका 'कुवलयानन्द' के उदाहरणों से सहायता ले ली गयी है। इसे देखने से यह प्रतीत होता है कि कुवलयानन्द के आधार पर रचित भैरोंलाल के 'भाषाभरण' को देखकर इसकी रचना हुई है। 'भाषाभरण' एक ऐसा ग्रंथ है, जिससे शास्त्र-बोध के साथ-साथ कवित्व शक्ति का भी परिचय प्राप्त होता है। कहीं कहीं तो कुछ उदाहरण पद्माकर ने 'भाषाभरण' से ही उठा-कर रख दिये हैं। देखिए —

> कहुँ पद तें कहुँ अर्थ तें, कहुँ दुहुन तें जोर।
> अभिप्राय जैसो जहाँ, अलङ्कार त्यों होइ॥
> अलङ्कार यक ठौर में, जो अनेक दरसाहिं।
> अभिप्राय कवि को जहाँ, सो प्रधान तिन माहिं॥
> ज्यों व्रज में व्रज-बधुन की, निकसति सजी समाज।
> मन की रुचि जा पर भई, ताहि लखत व्रजराज॥
>
> (भाषाभरण)

> शब्दहुँ तें कहुँ अर्थ तें कहुँ दुहुँ तें उर आनि।
> अभिप्राय जिहि भाँति जहँ, अलङ्कार सो मानि॥
> अलङ्कार इक थलहिं में, समुझि परै जु अनेक।
> अभिप्राय कवि को जहाँ, वहै मुख्य गनि एक॥
> ज्यों विधि एकै महल में, बहु मंदिर इक मान।
> जो नृप के मन में रुचे, गनियतु वहै प्रधान॥
>
> (पद्माभरण)

यह तो प्रारम्भ में ही है। आगे कुछ उदाहरण ऐसे हैं, जो 'भाषाभरण' के ही तो नहीं कहे जा सकते, परन्तु उन्हें भाव

धानी के साथ कुछ नवीनता लाते हुए उसके अनुकरण पर बनाया हुआ अवश्य कहा जा सकता है। एक उदाहरण देखिए :—

कीजै अति अनुहारि सखि, वाकी चूकहि गोइ।
पिय के हिय को प्यार तौ, यहि विधि दोहरो होइ॥
(भाषाभरण)

तो सो रूसि रह्यो जु हो, ब्रज-रसिकनि को राय।
हौं दोहा कहि वेग ही, ल्याई ताहि मनाय॥
(पद्माभरण)

इसके लक्षणों को संस्कृत के अनुसार ही रखने के प्रयत्न हुए हैं; कहीं-कहीं जिससे अलंकार का स्वरूप स्पष्ट नहीं होता इसका कारण समास-पद्धति और लक्षणों की केवल पद-बद्धता है। यह दोष हिन्दी के प्रायः सभी रीति-ग्रन्थों मे पाया जाता है।

यह ग्रन्थ अलङ्कार के स्वरूप-निर्धारण के लिए लिखा गया है और दो-चार विवादास्पद स्थलों को छोड़कर इसमें पर्याप्त सफलता भी मिली है। हिन्दी के अन्य अलङ्कार-ग्रन्थों की अपेक्षा यह सुबोध और सुस्पष्ट है और विषय की बोधगम्यता की दृष्टि से यह एक पठनीय ग्रन्थ है। यह रचना लक्षण-ग्रन्थ लिखने-वाले कवियों में अंतिम प्रसिद्ध कवि की है।

जगद्विनोद—यह नायिका-भेद का ग्रन्थ है, जिसे पद्माकर ने महाराजा जगत सिंह की आज्ञा से उनके आश्रय में रहकर लिखा था। मोटे रूप से इसमें पूरे रस-चक्र का निरूपण है, पर विस्तार शृंगार रस और तदन्तर्गत आलम्बन विभाव नायक-नायिक का है। इसका अध्ययन सामंतों के सरस संसार तथा राज-महल के सुख और आनन्द की एक विहंगम झाँकी दे देता है। इसमें जयसिंह की प्रशंसा का भी छन्द मिलता है और इसमें उल्लेख है कि 'जगत सिंह नृप-हुकुम तें' 'जाहिर करत जग-

हित जगत विनोद'। पद्माकर की जितनी रचनाएँ प्राप्त हैं, उनमें सबसे उत्तम 'जगद्विनोद' ही माना जाता है। इसमे पहले लक्षण और बाद में उदाहरण दिये गए हैं, जो स्पष्ट एवं सफल हैं। कहीं कहीं लक्षण भ्रामक और अशुद्ध हो गये हैं। इसमे लक्षणों का तार्किक मीमांसा का अभाव भी है। परन्तु इनके प्राय सभी उदाहरण मौलिक एवं भावपूर्ण हैं—केवल पाँच-छ संस्कृत से अनूदित हैं। यद्यपि इनकी रचनाओं मे शृंगार के दोनों पक्षों—वियोग एवं संयोग—का सरस वर्णन पाया जाता है फिर भी संयोग के जितने हृदयग्राही चित्र हम मिलते हैं, उतने वियोग के नहीं। 'वास्तव में यह शृंगार रस का सार-ग्रन्थ सा प्रतीत होता है। इनकी मधुर कल्पना ऐसी स्वाभाविक और हाव भावपूर्ण मूर्ति विधान करती है कि पाठक मानो प्रत्यक्ष अनुभूति में मग्न हो जाता है। ऐसा सजीव मूर्ति विधान करनेवाली कल्पना बिहारी को छोड़ और किसी कवि में नहीं पायी जाती। यह काव्य रसिकों और अभ्यासियों दोनों का कण्ठहार रहा।'

आलीजाह प्रकाश—यह ग्रन्थ सिंधिया के दौलत राव के नाम पर लिखा गया था। यह भी एक नायिका भेद का ग्रन्थ है। 'जगद्विनोद' और 'आलीजाह प्रकाश' की वर्णन पद्धति, छन्द, उदाहरण आदि सभी वस्तुएँ प्राय एक हैं। दौलतराव के नाम से करने के विचार से पद्माकर ने 'जगद्विनोद' को ही बदल कर एक नया ग्रन्थ बना डाला। उसी के छन्द कहीं-कहीं थोड़े शब्दान्तर से और अधिकांश में उन्हीं शब्दों में रखे गए हैं। नाम, स्थान आदि के खयाल से यथास्थान कुछ परिवर्तन अवश्य कर दिये गए हैं। तात्पर्य यह कि दोनों ग्रन्थ प्राय एक ही हैं। ऐसी तत्कालीन परम्परा ही थी। इसमे पद्माकर का कोई दोष नहीं था।

प्रबोधपचासा—यह इनके जीवन की सान्ध्य वेला में ज्ञान, वैराग्य तथा भक्ति-भावापन्न ५१ शब्दों का संग्रह है। इसकी कविताएँ मर्मस्पर्शिणी एवं सच्ची भावनाओं को व्यक्त करने-वाली हैं। इस पुस्तक का पहला छन्द शंकर की वन्दना का है। प्रतीत होता है कि इसका संग्रह भूलवश इस पुस्तक में हो गया है; क्योंकि पुस्तक के नाम के अनुसार भी इसमें केवल पचास ही छन्द होने चाहिए। पुस्तक की सारी कविताओं से ज्ञात होता है कि पद्माकर राम के उपासक थे।

हितोपदेश—यह संस्कृत के हितोपदेश का गद्य-पद्यात्मक भाषानुवाद है।

गङ्गा लहरी—इस पुस्तक में पुण्य-सलिला गंगा की महिमा एवं कीर्ति का वर्णन है और इस कारण यह गंगा के भक्तों का प्रिय ग्रन्थ है। इसमें भौतिक ऐश्वर्य और समृद्धि-सुख के प्रति वितृष्णा, पिछले पापों के लिए पश्चात्ताप तथा भक्ति की भावना का सुन्दर समन्वय मिलता है। यह अवश्य है कि इसके पद्यों में भावों की पुनरावृत्ति बहुत पायी जाती है। यह इनकी अंतिम-कालीन रचना है। आगे चलकर श्री जगन्नाथदास रत्नाकर ने भी गंगा का वर्णन करते हुए 'गङ्गावतरण' की रचना की। उसकी रचना में उन्होंने जो शैली अपनायी है, उसे 'पद्माकर-शैली' की संज्ञा से अभिहित किया जाता है।



# काव्य-सौन्दर्य

पद्माकर अपने काव्य सौंदर्य के कारण अपने समय के कवियों में सर्वाधिक जन प्रिय थे। इनकी सम्पूर्ण रचनाओं को तीन भागों—वीरया प्रशस्ति काव्य, शृङ्गार और भक्ति—में विभक्त किया जा सकता है, परन्तु इतना तो सत्य ही है कि कवि को जो लोक प्रसिद्धि मिली है, वह इनकी शृङ्गार पूर्ण रचना और भाषा की साधुता के कारण। भावों के मार्मिक अभिव्यक्तीकरण से लेकर रसों का उत्कृष्ट परिपाक, चित्रात्मकता, भाषा की मनोरम छटा और अनुप्रासों की मोहक लड़ी, ये सभी इनके काव्य-सौंदर्य के अभिन्न अंग हैं। अपने काव्य की इन्हीं विशेषताओं के कारण ये रसिकों के परम प्रिय हो गये। इन्होंने अपने युग की विभिन्न मनोवृत्तियों, विश्वासों एवं आकांक्षाओं को मूर्त्त रूप प्रदान किया और इसी कारण इन्हें पाठकों का प्रेम मिला।

रीति-काव्य में दो प्रवृत्तियाँ—रीति निरूपण अथवा आचार्यत्व और शृङ्गारिकता—अभिन्न रूप से गुथी हुई हैं। रीतिकालीन सभी कवियों ने आचार्यत्व तथा कवित्व दोनों के प्रदर्शन का भरसक प्रयत्न किया, पर तु आचार्य रामचद्र शुक्ल के शब्दों में 'आचार्यत्व के पद के अनुरूप कार्य करने में रीतिकाल के कवियों में पूर्ण रूप से कोई भी समर्थ नहीं हुआ। आचार्यत्व के रूप में पद्माकर ने जो कुछ भी करने की चेष्टा की है, वह नगण्य है। कवि के रूप में इनका रूप निखरा है। इसी रूप में इन्होंने रीतिकालीन दूसरी प्रवृत्ति—शृङ्गारिकता—का पूर्ण और समर्थ अकन किया है।

पद्माकर ने शृङ्गार के दोनों ही पक्षों—संयोग एवं वियोग—का वर्णन किया है; परन्तु इनका संयोग-वर्णन वहुत ही साधु, सजीव एवं सरस वन पड़ा है। इन्होंने चित्रात्मक शैली में वर्णन प्रस्तुत किये हैं, जिससे सारा वातावरण और दृश्य आँख वन्द कर लेने पर भी आँखों के सामने नाच उठता है। वात यह है कि शृङ्गार का धरातल मानवीय है और इस कारण चित्रों मे स्थूल सौंदर्य का गहरा रंग मिलता है।" इनके शृङ्गार-वर्णन मे नायिकाओं का अप्रतिम सौंदर्य, उनकी सुकुमारता, उनका सहज शृङ्गार, नायक-नायिका का प्रमालाप, चतुर प्रेमिकाओं की प्रगल्भता, प्रेमी-प्रेमिकाओं का पारस्परिक मिलन, आलिंगन, इन सभी के एक-सेएक मनोरम चित्र हैं। इनकी पारदर्शी आँखों ने वड़ा ही सूक्ष्म निरीक्षण किया है और उसका व्यक्तीकरण भी वहुत उत्तम हुआ है। आलस-जन्य सौंदर्य का एक चित्र देखिए—

> गोकुल में गोपिन गोविन्द-सग खेली फाग,
> राति भर प्रात समय ऐसी छवि छलकैं।
> देहें भरी-आलस कपोल रस-रोरी भरे,
> नींद-भरे नयन कछूक झपैं पलकैं॥
> लाली-भरी अधर वहाली-भरे मुखवर,
> कवि 'पद्माकर' विलोके को न ललकैं।
> भाग भरे लाल औ सुहाग-भरे सव अंग,
> पीक भरी पलकैं अवीर-भरी अलकैं॥

'पद्माकर स्वरूपांकन के विधान मे अत्यन्त निपुण थे। इनके यहाँ स्वरूपांकन के लिए स्थल-संकोच नहीं था, इसलिए इनके चित्र वहुत साफ उतरे है।' 'विहारी मे स्वरूपांकन की छटा दिखाने के लिए स्थल-संकोच था। दोहे के छोटे-से साँचे में वे स्वरूप का चित्र खींचने का प्रयास तो वरावर करते रहे हैं और

उसमें उन्हें सफलता भी मिली है, पर विस्तृत मैदान न मिलने से कहीं कहीं उनके चित्र का साफ स्वरूप वैसा नहीं उतर पाया है, जैसा पद्माकर का। देखिए, एक नवल किशोरी गोपिका होली खेलते-खेलते किस रूप में सामने आ खड़ी होती है, उसके वस्त्र किस प्रकार भीग जाते हैं और किन भाव मुद्राओं तथा चेष्टाओं के साथ वह अपनी भीगी हुई चूनरी को निचोड़ती तथा कपड़े बदलने की तैयारी करती है —

आई खेलि होरी घरै नवल किसोरी कहूँ,
बोरी गई रंगन सुगंधन झकोरे है।
कहै 'पदमाकर' इकंत चलि चौकी चढ़ि,
हारन के बारन तें फंद फंद छोरे है॥
घाँघरे की घूमनि सु ऊरुन दुबीचे दाबि,
आँगी हू उतारि सुकुमारि मुख मोरे है।
दंतनि अधर दाबि दूनरि भई सी चापि,
चौवर पचौवर कै चूनरि निचोरे है॥

इसमें सारा वातावरण एवं चित्र आँखों के सामने आ जाता है और यों कहें कि प्रस्तुत चित्रण एक छोटी-सी फिल्म रील का काम करता है।

नीचे एक कवित्त दिया जाता है, जिसमें कवि ने गणिका नायिका की शारीरिक मुद्राओं का वर्णन किया है —

आरस सों आरत सँभारत न सीस-पट,
गजब गुजारत गरीबन की धार पर।
कहै 'पदमाकर' सुगंध सरसावै सुचि,
बिथुरि बिराजै बार हीरन के हार पर॥
छाजत छबीले छिति छहरि छरा के छोर,
भोर उठि आई केलि मंदिर के द्वार पर।

एक पग भीतर सु एक देहरी पै धरे
एक कर कंज, एक कर है किवार पर ॥

उक्त वर्णन से स्पष्ट चित्र सामने आ जाता है।

रीतिकालीन कवियों ने वियोग-श्रृंगार के वर्णन में प्रकृति को उद्दीपन के रूप में प्रयुक्त किया है। पद्माकर भी इनसे अछूते नहीं रहे। सुन्दर भावों और मार्मिक दृष्टि से इनके वियोग-श्रृंगार के भी चित्र अच्छे बने हैं। इनका वसंत भी वियोगिनी के कष्ट बढ़ाने में ही अग्रणी है। गोपियाँ अपनी व्यथा उद्धव से कहती हैं और वंसत की विकसित प्रकृति को कोसती हैं। किंसुक की लाल-लाल डालियाँ उन्हें अंगार के पुंज की भाँति प्रतीत होती हैं, पलास-वन उनके हृदय में आग लगाते हैं, कोयल की कूक उनके हिय मे हूक उठाती है। तभी वे कोयल को 'कसाइन' तक कह डालती हैं :—

ए ब्रज-चंद्र चलो किन वॉ ब्रज लूकैं बसंत की ऊकन लागीं।
त्यों 'पदमाकर' पेखौ पलासनि, पावक सी मनो फूकन लागीं ॥
वै ब्रजवारी बिचारी बधू, बनवारी हियै लौं सु हूकन लागीं।
कारी कुरूप कसाइनैं ये सु, कुहू-कुहू क्वैलिया कूकन लागीं ॥

प्रकृति के उत्तेजक वातावरण के बीच एक विरहिणी की पुकार सुनिए :—

सॉझ के सलोने घन सबुज सु रंगन सों,
कैसे के अनंग अंग अंगनि सताइयौ।
काहे 'पदमाकर' झकोरि झिल्ली सोरन की,
मोहन को गहत न कोई मन ल्याउतौ ॥
काहु बिरही की कहीं मानि लेतौ जो पै कोई,
जग में दई तौ दया-सागर कहाउतौ।
पावस बनायौ तौ न बिरह बनाउतौ,
जो बिहर बनाउतौ न पावस बनाउतौ ॥

वियोग शृगार के वर्णन मे बिहारी ने भी यही शैली अपनायी है, परतु इन वियोग चित्रों मे अतिशयोक्ति का उतना गहरा रग नहीं है, जितना बिहारी के चित्रणों मे । इनकी नायिका बिहारी की विरही नायिका की भाति न तो घडी के पेण्डुलम की तरह छ सात हाथ आगे पीछे जाती है, न तो उसे देखकर ग्रीष्म ही दूर भाग उठता है और न उँडेली हुई पानी से भरी शशी ऊपर ही सूख जाती है । इनकी नायिका का तन विरह में पीला अवश्य हो जाता है और अधिक से अधिक वह भाग्य को कोसती रह जाती है —

सहज बिहूनी सेज पर परे देखि मुस्तान ।
तनिहि तिया को तन भयो मानो पक्यो पान ।।

इसी प्रकार एक दूसरी विरहिणी की दशा देखिए —

रैन दिन नैनन तें बहत न नीर बहा,
करतो अनग को उमग सरचाप तो ।
कहै 'पदमाकर' त्यों बाग बाग बन कैसो
तैसो तन ताप-ताप तारावति ताप तो ।।
का हैं जु वियोग तो सँयोग हू न देतो दई,
देतो जो सँयोग, तो वियोगहि न थापतो ।
होतो न जो प्रथम सँयोग सुख वैसो वह,
ऐसो अब तो न या वियोग दुख व्यापतो ।।

विरहिणी के लिए वर्षा की रिमझिम, वसत की बहार, आकाश म घिर घार कारे बादल, चादनी किस प्रकार वियोग को उत्तेजित करती है, इसका अत्यन्त रोचक एव सरस चित्रण पद्माकर ने किया है —

अगल अगन माहि अनत पे तु ग तुरग उमाहत आवैं,
त्यों 'पदमाकर' आवहुँ पास बरासन पे बन दाहत आवैं ।

मानव तीन के आनन में जु गुमान के गुंजन दाहत आवैं।
वान-सी बुन्दन के चदरा, वदरा बिरहीन पै ढाहत आवैं।।

डा० नगेन्द्र ने लिखा है कि रीतिकल के प्रतिनिधि कवि बिहारी, मतिराम, पद्माकर रसिक ही थे, प्रेमी नहीं। परंतु बात ऐसी नहीं हैं। पद्माकर के वर्णनों में प्रेम की सुंदर अभिव्यंजना, उसका तीखा रंग मिल ही जाता है। उदाहरणार्थ निम्न पंक्तियां देखिए :—

पाती लिखी सुमुखि सुजान पिय गोबिंद कों,
श्रीयुत सलोने स्याम सुखनि सनै रहौ।
कहै 'पदमाकर' तिहारी छेम छिन-छिन,
चाहियतु, प्यारे मन मुदित बनै रहौ।।
बिनती इती है कै हमेसहू मुहै तो निज,
पाइन की पूरी परिचारिका गनै रहौ।
याही में मगन मनमोहन हमारो मन,
लगन लगाइ लाल मगन बनै रहौ।।

इन्होंने जहाँ परम्परा की लीक छोड़ स्वच्छन्द हो प्रेम-क्षेत्र मे विचरण किया है, वहाँ इनकी कविता मे निखार आ गया है। पुरानी परिपाटी को भी इन्होंने अपनी प्रतिभा के कारण बहुत ही सुंदर बना दिया है। विभ्रम हाव का एक उदाहरण है :—

बछरे खरी प्यावै गऊ तिहि को 'पदमाकर' को मन लावत है।।
तिय जानि गिरैया गही बनमाल सु ऐंचे लता इँच्यो छावत है।।
उलटी करि दोहनी मोहनी की अँगुरी थन जानि कै दावत है।।
दुहिबो औ दुहाइबो दोउन को सखि देखत ही बनि आवत है।।'

प्रेम में विभोर हो भाव-मग्न होने का कितना सुंदर चित्रण है। निम्न पंक्तियों को भी देखें :—

वियोग शृगार के वर्णन में बिहारी ने भी यही शैली अपनायी है, परतु इन वियोग चित्रों म अतिशयोक्ति का उतना गहरा रग नहीं है, जितना बिहारी के चित्रणों मे। इनकी नायिका बिहारी की विरही नायिका की भाँति न तो घडी के पेण्डुलम की तरह छ मात हाथ आगे पीछे जाती है, न तो उसे देखकर ग्रीष्म ही दूर भाग उठता है और न उँडेली हुई पानी से भरी शशी ऊपर ही सूख जाती है। इनकी नायिका का तन विरह में पीला अवश्य हो जाता है और अधिक से अधिक वह भाग्य को कोसकर रह जाती है —

सहज बिछुनी सेज पर परे देखि मुस्कान।
तनिहिं तिया को तन भयौ मानो पक्यौ पान॥

इसी प्रकार एक दूसरी विरहिणी की दशा देखिए —

रैन दिन नैनन ते बहत न नीर वहा,
करतो अनग को उमग सरचाप तो।
कहै 'पदमाकर' त्यों राग बाग बन कैसो
तैसो तन ताप-ताप तारापति ताप तो॥
काहे तु वियोग तो सँयोग हू न देता दई,
देता जो सँयोग, तो वियोगहिं न थापतो।
होता न जो प्रथम सँयोग सुख वैसो वह,
ऐसो अब तो न या वियोग दुख व्यापतो॥

विरहिणी के लिए वर्षा की रिमझिम, वसत की बहार, आकाश म घिर कारे कारे बादल, चादनी किस प्रकार वियोग को उत्तेजित करती है, इसका अत्यत रोचक एव मरम चित्रण पद्माकर न किया है —

अगन अगन माहि अनत च तु रा तुरग उमाहत आवैं,
त्यों 'पदमाकर' आछहूँ पाछ बरावन वे बन दाहत आवैं।

मानव तीन के प्रानन में जु गुमान के गुंजन दाहत आवैं।
बान-सी बुन्दन के चदरा, बदरा बिरहीन पै ढाहत आवैं ।।

डा० नगेन्द्र ने लिखा है कि रीतिकल के प्रतिनिधि कवि बिहारी, मतिराम, पद्माकर रसिक ही थे, प्रेमी नहीं। परंतु बात ऐसी नहीं हैं । पद्माकर के वर्णनों में प्रेम की सुंदर अभिव्यंजना, उसका तीखा रंग मिल ही जाता है । उदाहरणार्थ निम्न पंक्तियां देखिए :—

पाती लिखी सुमुखि सुजान पिय गोबिंद कों,
श्रीयुत सलोने स्याम सुखनि सनै रहौ ।
कहै 'पदमाकर' तिहारी छेम छिन-छिन,
चाहियतु, प्यारे मन मुदित बनै रहौ ।।
बिनती इती है कै हमेसहू मुहै तो निज,
पाइन की पूरी परिचारिका गनै रहौ ।
याही में मगन मनमोहन हमारो मन,
लगन लगाइ लाल मगन बनै रहौ ।।

इन्होंने जहाँ परम्परा की लीक छोड़ स्वच्छन्द हो प्रेम-क्षेत्र में विचरण किया है, वहाँ इनकी कविता में निखार आ गया है। पुरानी परिपाटी को भी इन्होंने अपनी प्रतिभा के कारण बहुत ही सुंदर बना दिया है । विभ्रम हाव का एक उदाहरण है :—

बछुरे खरी प्यावे गऊ तिहि को 'पदमाकर' को मन लावत है ।।
तिय जानि गिरैया गही बनमाल सु ऐंचे लता इँच्यो छावत है ।।
उल्टी करि दोहनी मोहनी की अँगुरी थन जानि कै दावत है ।।
दुहिवो औ दुहाइवो दोउन को सखि देखत ही बनि आवत है ।।

प्रेम में विभोर हो भाव-मग्न होने का कितना सुंदर चित्रण । निम्न पंक्तियों को भी देखें :—

घर ना सुहात, ना सुहात बन बाहिर हूँ,
बाग ना सुहात जे खुसाल खुसबोही सों ॥
कहै 'पदमाकर' घनेरे घन-धाम त्यों ही,
चन्द न सुहात ना चाँदनी हूँ जोग जाही सों ॥
साँझ ना सुहात ना सुहात दिन माँझ कछू,
व्यापी यह बात सो बखानत हौं तोही सों ।
राति ना सुहात ना सुहात परभात आली,
जब मन लागि जात काहू निरमोही सों ॥

इसमें प्रेम की सुन्दर अभिव्यंजना है, जिसका मूल्य केवल शारीरिक ही नहीं, आंतरिक भी है । इसके भाव सुन्दर एव मार्मिक हैं ।

पद्माकर ने सामान्य जीवन से भी सामग्री चुनी है और उसमें अनोखापन आ गया है । एक पति अपनी पत्नी को नैहर नहीं जाने देता, यद्यपि उसके मायकेवाले उस नायिका के लिए दुखी हैं । इसका वर्णन करते हुए उन्होंने निम्न कवित्त लिखा है, जिसमें मायकेवालों के कष्ट और प्रयत्न का उल्लेख तो हुआ ही है, उनके प्यार की भी झलक दिखायी गयी —

मो बिन माइ न खाइ कछू' पदमाकर' त्यों भई भाभी अचेत है ।
बीरन आये लिवाइबे कों, तिनकी मृदु बानी हू मानि न लेत है ॥
प्रीतम को समुझावति क्यों नहीं, ये सखी तू जुपै राखति हेत है ।
और तो मोहिं सबै सुख री, दुख री यहै माइकै जान न देत है ॥

नायिका के रूप के गर्व की व्यंजना देखिए —

है नहिं माइका मेरी भटू यह बापुरो है सबको सहिबो करौ ।
त्यों 'पदमाकर' पाइ सोहाग सभा सखियान हु को चहिबो करौ ।
नेह भरी बतियाँ कहि के नित सौतिन की छतियाँ दहिबो करौ ।
चन्द्रमुखी यहै होनी हुती सो न कोऊ कहैगो सुखी रहिबो करौ ॥

पद्माकर ने ऋतुओं का वर्णन भी किया है। परंतु उसमें इन्होंने खिलावड़-सा किया है और एक दम मनोयोग नहीं दिया है। इनका ध्यान ऋतुओं की महत्ता की ओर नहीं, ऋतुओं की उद्दीपन-सामग्री की ओर विशेष रहा है और उसके वर्णन में इन्हें आशातीत सफलता भी मिली है। 'मनुष्य ही सब कुछ नहीं है; प्रकृति का अपना रूप भी है, इस सिद्धान्त के अनुसार ऋतुओं के व्यापारों में भी ये मानव-व्यापारों में ही संलग्न रहे हैं, जिससे उसमें कोई विशेषता नहीं आ पायी है। किन्तु यह मानना पड़ेगा कि मानव-व्यापरों के चित्रण में इनकी वृत्ति रमी है। इन्होंने वसंत का वर्णन किया है; परन्तु उसे इन्होंने उसकी आवश्यकताओं में देखा है तथा संपूर्णता में अनुभूत किया है। इनकी दृष्टि ने सभी दिशाओं में और कण-कण में प्रविष्ट होकर, वसंत की सुषमा और गरिमा को निकट से खोज-खोजकर और उसके उपकरणों को उठा-उठा कर सामने रखा है। इन्हें सर्वत्र वसन्त का ही विस्तार दृष्टि गोचर होता है :—

कूलन में, केलि में, कछारन में, कुंजन में,
क्यारिन में कलिन-कलीन किलकन्त है।
कहै 'पदमाकर' परागन में, पौनहू में,
पानन में, पिक में, पलासन पगन्त है॥
द्वार में, दिसान में, दुनी में, देस-देसन में,
देखौ दीप-दीपन में दीपत दिगन्त है।
बीथिन में, ब्रज में; नवेलिन में, बेलिन में,
बनन में, बागन में, बगरो बसंत है॥

वास्तव में इन्होंने वसन्त से अपना तादात्म्य कर लिया है और उसी में मुक्त होकर रमे-झूमे हैं। इन पंक्तियों से सूची

गनाने की प्रवृत्ति, अभिव्यक्ति की अभिधात्मकता, अलंकार प्रदर्शन-प्रियता, छन्दों के वृत्तों के परिष्करण की रुचि आदि बहुतेरी बातों का पता लग जाता है।

ऐसी ही दशा अन्य ऋतुओं के सम्बन्ध में भी है। ग्रीष्म के सन्ताप का वर्णन इन्हें उतना नहीं भाता, जितना उसके निवारण की सामग्री का जुटाना —

> गजक अँगूर को अगूर सों उचौहैं कुच,
> आसव अँगूर को अँगूर ही की टाटी है।

## 'प्रकृति-वर्णन'

नीचे एक वर्षा वर्णन का चित्र प्रस्तुत है, जिसमें स्वाभाविकता तो है, परन्तु शब्द चमत्कार का लोभ संवरण नहीं कर सके हैं—

> मल्लिकन मञ्जुल मलिंद मतवारे मिले,
> मन्द-मन्द मारुत मुहीम मनसा की है।
> कहै 'पदमाकर' त्यों नदन नदिन नित,
> नागर 'नवेली की त्यों नजर नसा की है।।
> दौरत दरेरो देत दादुर सु दूँदै दीह,
> दामिनी दमकन्त दिसान में दसा की है।
> बद्दलन बुंदन बिलोक बगुलान बाग,
> बँगलान बेलिन बहार बरषा की है।।

पावस, शरद्, हेमंत, में शिशिर में भी ये 'गुलगुली गिल में' आदि की ओर अधिक व्यस्त दीखते हैं और शब्द चमत्कार में ही उलझ गये हैं। परन्तु यह मानना पड़ेगा कि ऐसा केवल प्रथा पालन के कारण हुआ है, एक चली आती हुई परिपाटी को अविच्छिन्न रखने में हुआ।

होलिकोत्सव-सम्बन्धी पदों में पद्माकर ने रीतिकालीन कवियों

की पंक्ति में खड़े होकर उन्हीं की शैली में गोपी और कृष्ण को चित्रित किया है :—

> एकै सग धाये नंदलाल औ गुलाल दोऊ,
> दृगन गये जो भरि आनँद मढे नहीं।
> धोय-धोय हारी 'पदमाकर' तिहारी सोहैं,
> अब तो उपाव कोउ चित्त पै चढ़ै नहीं॥
> कैसी करों, कहाँ जाउं, कासों कहों, कौन सुने,
> कैसो हूँ निकासों, जासों घरद बढ़ै नहीं।
> एरी मेरी बीर जैसे-तैसे इन आँखिन सों,
> कढ़िगौ अबीर पै अहीर तो कढ़ै नहीं॥

इसकी एक-एक पक्ति उत्तरोतर उत्तम से उत्तमतर की ओर अग्रसर होती है और अतिम पक्ति चरम सीमा पर ले जाकर झकझोर देती और मन को मुग्ध एवं चकित कर देती है। इसका गद्यात्मक चित्र-सौंदर्य दर्शनीय है। गोपिका की आँख में नदलाल और गुलाल दोनों साथ-साथ जाते है। अबीर तो जैसे-तैसे निकल गया, परन्तु अहीर श्रीकृष्ण धोय-धोय हारने पर भी नहीं निकले। यहाँ विरोधाभास का चमत्कार-पूर्ण आभास काव्य के सौंदर्य को द्विगुणित कर देता है।

अबीर की किरकिराहट से घबरायी हुई नायिका फाग खेलने की इच्छा रखने पर भी ब्रजराज से आँखों में अबीर न मलने की प्रार्थना करती है; क्योंकि वह देखते ही रहना चाहती है, उसकी आँखें तो उनके रँग मे रँगी हैं :—

> भाल पै लाल गुलाल गुलाब सों गेर गरे गजरा अलबेलौ।
> यों बनि बानक सों 'पदमाकर आये जु खेलन फाग तौ खेलौ॥
> पै इक या छबि देखिबे के लिए, मो बिनती कै न झोरिन झेलौ।
> रावरे रंग-रँगी अँखियान मे, ए बलबीर अबीर न मेलौ॥

होली का एक और चित्र देखिए। इसमे गोपिकाओं ने श्रीकृष्ण को अच्छा पाठ पढ़ाया है —

> फाग के भीर अभीरन त्यों, गहि गोबिंद लै गयी भीतरी गोरी।
> भाई करी मन की 'पदमाकर' ऊपर नाइ अबीर की झोरी॥
> छीन पितम्बर कम्मर तैं, सु बिदा दई मीड़ि कपोलन रोरी।
> नैन नचाइ कही मुसकाइ, लला फिरि आइयो खेलन होरी॥

## भक्ति परक काव्य

जिस लगन से, जिस तन्मयता से पद्माकर ने शृंगार का वर्णन किया है, उद्दीपन भावों मे उत्तेजना पैदा की है, उसी लगन से इन्होंने भक्ति के भी गीत गाये हैं। इनकी विरक्ति सच्ची है, इनके उद्‌गार सच्चे हैं और इसीलिए इनके वर्णन मे भी ईमानदारी है। रीतिकालीन कवि तो अन्त तक शृंगार में ही डूबे रहे, तभी तो आचार्य केशवदास अपनी ढलती बेला मे भी कहते थे "केशव केसन अस करी, जस अरिहहुँ न कराय, चन्द्र बदनि मृग लोचनी बाबा कहि कहि जाय।" परन्तु पद्माकर का मानस, मालूम होता है, विलासमय जीवन और जीवन की रंगीनियों से अपनी वृद्धावस्था में विरक्त हो गया और जीवन के सत्य को पहचान वैराग्य की पावन सुगंधि से भर उठा। तभी तो जिन स्वरों से "अधखुली कचुकी, उरोज अध आधे खुलै" का गीत इन्होंने गाया था, उन्हीं स्वरों से इन्होंने वैराग्य की वंशी का स्वर अलापा, पावन गंगा की अजस्र धारा का मनोरम दृश्य वर्णित किया, "ज्यों कुच त्यों ही नितब चढे, कुछ ज्यों ही नितब त्यों चतुराई सी"—जैसे शृंगारी कविता के रचयिता पद्माकर ने "आवति गलानि जो बखान करौं ज्यादा यह, काया मल-मूत्र और मज्जा की सलीती है" लिखना प्रारंभ कर दिया। अपनी भक्ति-परक कविताओं में इन्होंने अपने किये हुए पापों

के प्रति दारुण मर्मभेदिनी आंतरिक सचेतन स्वीकृति भी प्रकट की। इन्होंने अपने युवावस्था के क्रिया-कलापों पर आँसू भी बहाये हैं, पश्चात्ताप भी किया है और अपने को धिक्कारा भी है। ये भगवान् की दीनबंधुता, पतितपावनता और अधमोद्धार के कर्तव्य पर विश्वास कर अपने पापों के बोझ को हलका करना चाहते हैं। इनका ध्यान केवल अनुताप तक ही रह जाता है। पापों का ध्वंस-मात्र ही इनका इष्ट है। इनकी दृष्टि पश्चात्ताप की उस सीमा को स्पर्श भी नहीं करती, जहाँ भक्त तन्मयता और आत्म-समर्पण तक पहुँच जाता है; जहाँ जाकर स्व और पर का भेद मिट जाता है। इनकी भक्ति-पूर्ण रचनाओं को पढ़-कर ऐसा लगता है, मानो इन पदों की रचना किसी भक्तिकालीन कवि ने की है।

यद्यपि इन्हे राम-भक्ति पर पूर्ण विश्वास था, फिर भी इन्होंने श्रीकृष्ण की बाल छवि का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया है।

देखु 'पदमाकर' गोविंद की अमित छवि,
संकर समेत विधि आनँद सो बाढ़ो हैं।
भिझिकत झूमत मुदित मुसुकात गहि,
अंचल को छोर दोउ हाथन सो आढ़ो हैं॥
पटकत पाँव होत पैजनी झुनुक रंच,
नेक-नेक नैनन ते नीर-कन काढ़ो हैं।
आगे नंदरानी के तनिक पय पीवे काज,
तीन लोक ठाकुर सो ठुनुकत ठाढो है॥

इन्हें राम की भक्त-वत्सलता और उनके सरल स्वभाव का पूरा बल था। तभी तो अपने पूर्व क्रिया-कलापों पर पश्चात्ताप करते हुए इन्होंने लिखा है :—

आस बस बास बस विविध बिलास बस
बासना बदी को सुर आसना लौं हरिहो।
कहै 'पदमाकर' त्यों अधम अजामिल-लौं,
औगुन हमारे गुन मानि हो तौ धरिहो॥
गुह पर गीध पर गनिका गयन्द पर,
जाही ढार ढरे तबै ताही ढार ढरिहो।
है रहौं तिहारे चरनन ही को चेरो कहूँ,
ऐसो मन मेरो कब मेरे राम करिहो॥

निम्न पंक्तियों से भी इन्हीं बातों पर प्रकाश पड़ता है —

को किहि का सुत, को किहि को पुत, को किहि को पति, कौन की कोती।
कौन को कोजग ठाकुर चाकर, को 'पद्माकर' कौन को गोती॥
जानकी जीवन जानि यहै, तजि दे तू सबै धन धाम औ धोती।
हौं तो न लोटतो लोभ लपेट में पेट को जो पै चपेट न होती॥

*राम के पश्चात् 'पद्माकर' का पतित-पावनी गंगा के प्रति* असीम विश्वास झलकता है। गंगा के मनोहर दृश्य का तो वर्णन इन्होंने किया ही है, गंगा के प्रति अपनी श्रद्धा और विश्वास को भी इन्होंने बहुतेरे पदों में व्यक्त किया है। एक स्थल पर तो इन्होंने गंगा के बल पर पाप को फटकारा भी है, उसे चेतावनी भी दे दी है —

जैसे तैं न मो सों कहूँ नेकहू डरात हुतो,
तैसो अब तो सों हौं हूँ नेकहू न डरिहौं।
कहै 'पदमाकर' प्रचण्ड जो परैगो तो,
उमड़ि करि तो सों भुजदण्ड ठोंकि लरिहौं॥
चलो चलु चलो चलु बिचलु न बीच ही तें,
कीच-बीच नीच तो कुटुम्ब को कचरिहौं।
एरे दगादार मेरे पातक अपार, तोहि,
गंगा की कछार में पछारि छार करिहौं॥

# अलंकार-निरूपण

यों तो पद्माकर ने 'पद्माभरण' नामक अलंकार ग्रन्थ ही लिखा है, परन्तु इनकी अन्य रचनाओं में भी आलकारिक भापा प्रयुक्त हुई है, अलंकार का आडम्वर वहुत कम है। वह तो युग ही था, जव अनुप्रास की प्रवृत्ति प्राय: सभी में समायी हुई थी। इनकी अनुप्रास-प्रियता वहुत प्रसिद्ध है। अनुप्रास की छटा के दर्शन इनकी कविता में स्थान-स्थान पर हो जाते हैं। एक चतुर चितेरा जिस प्रकार यह जानता है कि कहाँ कौन-सा रंग प्रयोग करने पर चित्र में निखार आयेगा, मनोहरता आयेगी, उसी प्रकार ये जानते थे कि कहाँ कौन शव्द प्रयुक्त हो चमत्कृत होगा, सजीव होगा। इनकी अनुप्रास-योजना कभी-कभी रुचिकर सीमा के वाहर जा पड़ी है, भावाभिव्यक्ति में वाधक हुई है; परन्तु वह भी केवल तभी, जव जान-बूझकर संकुचित विचार से कुछ विशेप प्रकार के पद्यों में अनुप्रास का प्रयोग किया गया है। इनके अनुप्रास तो कहीं-कहीं भापा को फड़कन, एक अजीव-सी तड़पन एवं ओज प्रदान करते हैं। अनुप्रास के उदाहरण के लिए इनके किसी पद को प्रस्तुत किया जा सकता है। वर्ण्य-सामग्री की स्फुट-योजना में कोई रमणीयता न होने के कारण इन्होंने वर्ण-मैत्री के द्वारा ही उसमें चमत्कार उत्पन्न करने का प्रयत्न किया है। अनुप्रास के अतिरिक्त इन्होंने यमक, श्लेप, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का भी प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं :—

सोभित सुमनवारी सुमना सुमनवारी,
कौन हू सुमनवारी को नहिं निहारी है।

कहै 'पदमाकर' त्यों बाघनू बसनवारी,<br>
वा ब्रज बसनवारी ह्यो हरनहारी है ॥<br>
सुबरनवारी रूप सुबरन वारी सजै,<br>
सुबरनवारी काम कर की सँवारी है।<br>
सीकरनवारी सद सीकरनवारी रति,<br>
सी करनवारी सो बसीकरन-वारी है ॥

(यमक)

याही छिन वाही सों न मोहन मिलौगे जो पै,<br>
लगनि लगाइ एती अगिनि अबाती सी।<br>
रावरी दुहाई तौ बुझाई ना बुझैगी फेरि,<br>
नेह भरी नागरी की देह दिया बाती-सी ॥

( छेकानुप्रास, श्लेष, का य लिं ग और उपमा )

कछु गज गाजि के आहटनि, छिन छिन छीजत सेर।<br>
बिधु बिकास बिकसत कमल कछू दिनन के फेर ॥

( रूपकातिशयोक्ति तथा विरोधाभास )

नीलमनि-जटित सुबेंदा उच्च कुच पै<br>
पर्‍यो है, टूटि ललित ललाट के मजेजे तें।<br>
मानो गिर्‍यो हेमगिरि सृ ग पै सुकेलि करि<br>
कढ़ि कै कलङ्क कलानिधि के करेजे तें ॥

( उत्प्रेक्षा )

आँखिन ते आँसू उमड़ि परत कुचन पर आन।<br>
जनु गिरीस के सीस पर, ढारत भर मुकुतान।

( उत्प्रेक्षा )

दिन कै किवार खोलि कीनो अभिसार, पै<br>
न जानि परी काहू कहाँ जाति चली छल-सी।<br>
कहै 'पदमाकर' न नाँकि री सँकोरै जाहि,<br>
काँकरी पगनि लगै पंकज के दल सी ॥

कामद सो कानन कपूर-ऐसी धूरि लगै,
पट-सो पहार नदी लागत है नल-सी।
घाम चाँदनी-सो लगै, चन्द-सो लगत रवि,
मग मखतूल-सो मही हू मखमल-सी॥
(रूपक)

सुरँग सुरंग नैन सोभित अनंग रंग,
अंग-अंग फैलत तरंग परिमल के।
बारन के भार सुकुमारि को लचत अंग,
राजै पर्जङ्क, पै जु भीतर महल के॥
कहै 'पद्माकर' बिलोकि जन रीझैं जाहि,
अम्बर अमल के सकल जल-थल के।
कोमल कमल के गुलाबन के दल के सु,
जात गड़ि पायन बिछौना मखमल के॥
(अतिशयोक्त)

कैधों रूप-रासि में सिंगार रस अंकुरित,
कंकुरित कैधों तम तड़ित जुन्हाई में।
कहै 'पद्माकर' किधों यों काम कारीगर,
नुकता दियो हैं हेम फरद सुहाई में॥
कैधों अरबिंद में मलिंद-सुत सोयो आनि,
कैधों तिल सोहत कपोल की लुनाई में।
कैधों पर्‌यों इन्दु में कलिंदी जल बिंदु कैधों,
गरक गोबिंद गयो गोरी की गुराई में॥
(सन्देहालंकार)

---

# भाषा, मुहावरे और लोकोक्तियाँ

पद्माकर की भाषा मूल के विचार से ब्रजभाषा है। इनकी प्रारम्भिक कविता पर बुन्देली का और बाद की कविता पर अतर्वेदी का प्रभाव है। फारसी के प्रचलित शब्द—रोसनी, अनार आदि—इनकी भाषा मे भरे पड़े हैं। इनकी कविता मे प्रयुक्त छिक, सपटो, छिरकना आदि शब्द बुन्देली के और खासे, खसबोइ, अजार, अभिरना, ढागना आदि शब्द अतर्वेदी के शब्द हैं। परतु इससे इनकी काव्य कला को क्षति नहीं पहुँची, उसमे चार चाद ही लगे। भाषा के विभिन्न रूपों के प्रयोगों मे ये तुलसीदास से टक्कर लेते हैं। इनकी कविता म भूतकाल की क्रिया मे पश्चिमी एवं पूर्वी दोनों प्रकार की ब्रजभाषा के रूप प्रयुक्त हुए हैं। इनकी प्रारम्भिक कविता म विभक्तियों का रूप कुछ प्राचीन ढग का है और आगे चलकर वह सामान्य रूप हो गया है। तृतीया म सी, चतुर्थी मे कों या को, पचमी म तें और सप्तमी म 'म' का प्रयोग मिलता है। विभक्तिहीन बहुवचनात शब्दों का बोध कराने के लिए इन्होंने 'नि' और विभक्तिवाले बहुवचनात शब्दों को 'नात' रखा जो व्याकरण के नियमों के अनुकूल था। वर्णनात्मक प्रसगों में इन्होंने सानुप्रास भाषा का प्रयोग किया है। वीर रस के प्रसग म इनकी वृत्ति योजना सीमा को पार कर गयी है। सयुक्ताक्षरों तथा द्वित्व वर्णों के प्रयोग से उसम कृत्रिमता आ गयी है। कोमल तथा उपनागरिका वृत्ति के सफल प्रयोग द्वारा वीर रस के वर्णन म तो कहीं-कहीं इनकी रचना नितात शब्दाडबर की खाल ओढकर उछलती कूदती चलती है।

उनमें पद्माकर जादूगर के शब्द आपस में ही मुक्का-मुक्की, धक्का-धुक्की करते दीख पड़ते हैं। परन्तु जहाँ ये वृत्ति के ऐसे स्वांग की चपेट में नहीं आये हैं, वहाँ इनकी भाषा बड़ी प्रभावोत्पादक है। कोमल तथा उपनागरिका वृत्ति के सफल प्रयोग द्वारा इन्होंने प्रसाद एवं माधुर्य गुण लाने का प्रयास किया है। उसमें न तो चन्द की रुक्षता मिलती है, न केशव की क्लिष्टता एवं भाव-प्रक्षेप ही मिलता है और न सेना-पति के दुरूह, द्व्यर्थक शब्दों की प्रदर्शनी ही। कबीर का अक्खड़पन भी इनकी कविताओं में नहीं है। इनके पास शब्दों की कमी नहीं थी; अतः छन्दों को सरस तथा कलापूर्ण बना सकने में ये पूर्ण समर्थ हो पाये। भाषा-चयन तथा सजीवता की दृष्टि से इनकी तुलना रीतिकालीन कवियों में मतिराम तथा अँग्रेजी साहित्य में वर्ड्सवर्थ तथा आधुनिकों में रत्नाकर से की जा सनेती है। बाह्य प्रेरणा से प्रेरित हो 'ऊहा के बल पर कारीगरी के मजमून बाँधने' का प्रयास इन्होंने देव-सा नहीं किया है।

भाषा की कसौटी पर पद्माकर का काव्य स्वर्ण ऐसा खरा उतरता है। जिस स्थूल पर जैसी भाषा का प्रयोग होना चाहिए, उसे ये खूब जानते थे। भावानुकूल भाषा का प्रयोग करने की जैसी क्षमता पद्माकर में थी, वैसी बहुत थोड़े ही कवियों में दृष्टिगोचर होती है। सफाई और प्रवाह के साथ इनकी भाषा में लोच भी है। इनकी प्रवाहमयी सरस भाषा पाठकों के हृदय को बरबस आकृष्ट कर लेती है। रीतिकालीन प्रतिनिधि कवियों में मतिराम ही इनकी सरसता को पहुँचते हैं। मतिराम और देव की काव्य-कला चाहे इनसे कितनी ही निखरी हुई क्यों न हो, परन्तु जो लोकप्रियता इन्हे प्राप्त हो सकी, वह उन्हें नहीं मिल सकी। बिहारी को छोड़कर अन्य

किसी कवि म ऐसी विस्मयकारी अलौकिक प्रतिमा न भी, जिससे शब्दों के प्रयोग के द्वारा आँखों के समक्ष सजीव और चेतन मूर्ति उपस्थित हो जाय। कहीं कहीं भाषा और भाव के माधुर्य म बनी प्रवीन इनके टक्कर क हैं। घनानंद आदि पुराने कवियों मे पद-लालित्य चाहे हो, पर भाषा का वैसा सधा रूप उनमे भी नहीं है। ये एक कुशल विधायक थे। इनके कवित्तों की मँजी हुई लय हमें हिंदी के किसी भी अन्य कवि में नहीं मिलती कुछ कवियों तथा समीक्षकों की दृष्टि म पद्माकर रीतिकाल के सर्वोत्कृष्ट कवि ठहरते हैं।

पद्माकर ने लाक्षणिक भाषा का बडा सफल प्रयोग किया है। यह इनकी अपनी विशेषता है। इनके लाक्षणिक वर्णन सम्पूर्ण चित्र को सजीव बना देते हैं। लाक्षणिक शब्दों के प्रयोग द्वारा ये मन की अव्यक्त भावना को कहीं कहीं ऐसा मूर्तिमान कर देते हैं कि सुनने वाले का हृदय आपसे आप हामी भरता है। इनके शब्दों का आरोह अवरोह और मस्तानी चाल अर्थ-प्रकाशन की शक्ति को द्विगुणित कर देते हैं और अनुप्रास भी उसम सहज ही आ जाते हैं —

> आम को कहत अमली है, अमली को आम,
> 　　　आम ही अनारन को आकिबो करति है।
> कहै 'पद्माकर' तमालन को ताल कहै,
> 　　　तालनि तमाल कहि ताकिबो करति है॥
> 'कान्है कान्ह' कहूँ कहि कदली कदंबन को,
> 　　　भेंट परिरभन में छाकिबो करति है।
> साँवरे जू रावरे यों विरह बिकानी बाल,
> 　　　बन-बन बावरी लौं बाकिबो करति है॥

शब्दों द्वारा वर्ण्य विषय के अनुकूल ध्वनि उत्पन्न कर

देना, भावों का चित्र प्रस्तुत कर देना, शब्द-आवृत्ति के द्वारा रोचकता उत्पन्न करना इनकी अपनी विशेषता है :—

> हूले इतै पर मैन-महावत, लाज के आदू परे गथि पाइन।
> त्यों 'पदमाकर' कौन कहै, गति माते मतंगन की दुखदाइन।।
> ये अँग-अँग की रोसनी मे सुभ सोसनी चीर चुभ्यो चितचाइन।
> जाति चली व्रजठाकुर पै ठमका ठुमकी ठमकी ठकुराइन।।

इसके अंतिम पद के पढ़ने पर सचमुच नूपुर की ध्वनि कानों में सुनाई पड़ती है।

इसी प्रकार 'अधखुले' शब्द के प्रयोग द्वारा इन्होंने शैथिल्या एवं अस्त-व्यस्तता का सराहनीय चित्र प्रस्तुत किया :—

> अधखुली कंचुकी उरोज अध-आधे खुले,
> अधखुले वेस नख रेखन के झलकैं!
> कहै 'पदमाकर' नवीन अधनीवी खुली,
> अधखुले छहरि छरा के छोर छलकैं।।
> भोर जगि प्यारी अध-ऊरध इतै की ओर,
> भाखी झिखि झिरकि उघारि अध-पलकैं।
> आखें अधखुली अधखुली खिरकी है खुली,
> अधखुले आनन पै अधखुली अलकैं।।

इसकी भाव-भूमि तो उतनी गहरी नहीं है, परन्तु इनके शब्दों की शक्ति इतनी जोरदार है कि आँखे बंद कर लेने पर भी चित्र हृदय-पट पर उतर आता है।

महाकवि जयदेव की इसी प्रकार की पंक्तियाँ देखें :—

> व्यालोल, केशपाश, स्तरलितमलकै, स्वेदलोलौक पोलौ
> दृष्ट्वा बिम्बाधर श्री-कुच-कलश रुचाहारिता हार यष्टिः।
> काञ्ची काञ्चिद्गताशां स्तनजघन पदंपाणिना छाद्य सद्यः
> पश्यन्ती सत्रपमान्तदपि विलुलितस्रग्धरेयन्धुनोति।।

नीचे के कवित्त के 'देखु' शब्द के संकेत पर ही देखन को जी ललच जाता है, हृदय मे एक जिज्ञासा जाग्रत हो जाती है

देखु 'पदमाकर' गोविंद की अमित छवि,
सकर समेत बिधि आनँद-सो बाढ़ो है।
झिझिकत झूमत मुदित मुसुकात नहि,
अंचल को छोर दोऊ हाथन सों आढ़ो है॥
पटकत पाँव होत पैजनी झुनुक रव,
नेक-नेक नैनन तें नीर कन काढ़ो है।
आगे नदरानी के तनक पय पीबै काज,
तीन लोक ठाकुर सो ठुनुकत ठाढ़ो है॥

## मुहावरे

मुहावरों का प्रयोग इन्होंने बडी कुशलता से किया है। वे ऐसे नहीं प्रतीत होते कि जान-बूझकर उनका प्रयोग गया है, बाहर से उन्हें चिपकाया गया है, वरन् उनमें स्वभाविकता है, वे भाषा के साथ ऐसे मिले हुए हैं कि उन्हें सहसा अलग भी नहीं किया जा सकता। नीचे मुहावरों के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं —

१ गेह में न नाथ रहै द्वारे ब्रजनाथ रहै,
कौ लौं मन हाथ रहै, साथ रहै सब सों।
२ खीझियो न मो प मुख लागत भले ही राम,
नाम हूँ तिहारो जो हमारे मुख लाग्यो है।
३ अधम उधारन, हमारे रामचन्द्र तुम
साँचे बिरदैत या तें काचे हम क्यों परें।
४ जहाँ जहाँ मइया तेरी धूलि उड़ि जाति गंगा,
तहाँ तहाँ पापन की धूरि उड़ी जात है।

५. वेपरद वेदरद गजब गुनाहिन के
गंगा की गरव कीन्हें गरद गुनाह सब।
६. हेर्‌यो हरे-हरे हरी चूरिन ते चाह्यो जो लौं
तौ लौं मन मेर्‌यो दौरि तेरे हाथ परिगो।
७. एक दिना नहिं एक दिना कबहूं फिरि वे दिन फेर फिरैंगे।
८. अब हाथ के कंगन को कहा आरसी।
९. आपने हाथ सों आपने पाँय पै पाथर पारि पर्‌यो पछराने।
१०. तन जोबन है घन की परछाँहीं।

कहीं-कहीं अशुद्ध मुहावरों का प्रयोग भी इन्होंने किया है, जो सबको नहीं खटकते :—

मोहिं झकझोरि डारी, कंचुकी मरोरि डारी,
तोरि डारि कसनि बिथोरि डारी वेनी ज्यों।

## लोकोक्तियाँ

मुहावरों के अतिरिक्त नीति-परक लोकोक्तियों का भी इन्होंने प्रयोग किया है, जिन्हें निकाल देने पर कविता के प्राण ही निकल जाते हैं। कुछ उदाहरण देखिए :—

१. साचहूँ ताको न होत भलो जो न मानत है कही चार जने की।
२ जो बिधि भाल में लीक लिखी सो बढ़ाई बढे न घटै न घटाई।
३. भूरि ही चूकि परै जो कहूँ तिहि चूकि की हूक न जात हिय तें।
४. लैसी भई तुम्हें गंग की गैल में गीत मँदारन के लगे गावन।

तात्पर्य यह है कि पद्माकर की भाषा का रूप सधा हुआ, सरस एवं मोहक है।

———

# परवर्ती कवियों पर प्रभाव

रीतिकालीन परम्परा के अनुसार ही पद्माकर ने भी शृंगार को अपना हार बनाया और उसी की दमक से राज दरबार को चकाचौंध किया। ऐसा करते समय इनके समक्ष इनके पूर्व वर्ती सुप्रसिद्ध कवि केशव, देव, मतिराम, बिहारी, आलम आदि की रचनाएँ थीं। इनकी रचना की सरसता रसखान और मतिराम से, ऐन्द्रियता विद्यापति तथा देव से और भावानुभूति जयदेव, तोष एवं दास से मिलती-जुलती है। आगे 'देव' एवं 'पद्माकर के पद दिये जाते हैं, जिनमें भाव-साम्य स्पष्ट है —

सोन सरोज कलीन पे खोज उरोजन को उर बोतु निहारो।
देव जु बादत आपचरा पल त्यों ही नितम्ब भयो कछु भारो॥
कानन की ढिग ह्वै दृग दौरत चातुरी चाउ चबाउ पसारो,
दा‍यो दुहुँन दुइ दिशि ते भयो दूबरो सो दबिलक बिचारो॥

(देव)

ये अलिया बलि के अधरानि में आनि चढ़ी कछु माधुरई सी।
ज्यों 'पद्माकर' माधुरी त्यों कुच दो उनकी चढ़ती उनई सी॥
ज्यों कुचत्यों ही नितम्ब चढ़े कछु ज्योंही नितम्ब त्यों चतुराई सी।
जानी न ऐसी चढ़ाचढ़ि में केहि धौं कटि बीच ही लूटि लई सी॥

(पद्माकर)

भाव साम्य की दृष्टि से 'श्रीपत' की कविता से इनकी कविता को मिलाइए :—

कै रति रंग थकी थिर ह्वै, परजंक पर प्यारी परी अलसाय कै।
त्यों 'पद्माकर' स्वेद के बिन्दु, लसैं मुकुताहल से तन छाय कै॥

न्दु रचै मेंहदी के सलै पर, तापर यों रह्यो आनन आय कै ॥
न्दु मनो अरविंद पै राजत, इन्द्रवधून के वृन्द बिछाय कै ॥
(पद्माकर)

भोर भयो तकिया सों लगो, तिय कुन्तल पुञ्ज रहे वगराय कै।
कंजन से करके तल ऊपर, गोल कपोल धरे अलसाय कै ॥
आनन पै बिलसै रद की छबि, 'श्रीपति' रूप रह्यो अति छाय कै।
मानहु राहु मों घायल ह्वै विधु, पौढो है पंकज के दल आय कै ॥
(श्रीपति)

आर्य-रमणियों का विरह-वेदना को मूक भाव से सहन करने का चित्र निम्न छंद में बहुत अच्छा अंकित किया गया है :—

इक मीन विचारी बिन्ध्यो बनसी,
पुनि जाल के जाय दुमाले पर्‌यो ॥
मन तो मनमोहन के सँग गो,
तन लाज मनोज के पाले पर्‌यो ।

तोप और बिहारी के इसी अवस्था के चित्रण से इसकी तुलना कीजिये :—

प्रीतम की हित पौन गहि, लिये जात तेहि संग।
गहि डोरी कुल-लाज की, भई चंग के रंग ॥
(तोषनिधि)

नई लगन कुल की सकुच, बिकल भई अकुलाय।
दुहूँ ओर ऐंची फिरै, फिरकी लौं दिन जाय ॥
(बिहारी)

परन्तु इनकी कविता का इतना प्रचार हुआ कि प्राचीन शैली का कोई परवर्ती कवि ऐसा न था, जिसने इन्हे पढ़ा-सुना नहीं हो, इनके भाव-भाषा की नकल करने की चेष्टा न की हो। इनकी रचनाओं को ध्यानपूर्वक देखने से सहज ही पता लग जाता है

कि इन सबकी शैली पद्माकर-सी ही है। द्विजदेव, काली तथा लछिराम ने तो इनके भावों की नक्ल की और ग्वाल ने इनके विषय, उप-विषय, प्रसग, भाव, भाषा, छन्द आदि का होडा होडी म अनुकरण किया। उन्होंने इनकी 'गगा-लहरी' के अनुकरण पर 'यमुना-लहरी', तथा 'जगद्विनोद' के अनुकरण पर 'रसरग' की रचना की। 'गगा लहरी' मे पद्माकर ने निम्न कवित्त लिखा था —

> अबन के बीच बीज-समै महानीच-मुवे,
> गगा मैया तेरे अम्बु रेनु-कन ह्वै गये।
> कहै पदमाकर' दसा यों सुनी ताकी बाकी,
> छवि की छटान सों त्यों छिति छोर छ्वै गये।
> दूत दबकाने चित्रगुप्त चुपकाने, औ
> जकाने जमजाल पाप पुञ्ज लुकलये गये।
> चारिमुख चारिभुज चाहि-चाहि रहे ताहि,
> पचन के देखत ही पचमुख ह्वै गये।

इसी के अनुकरण मे ग्वाल कवि ने 'यमुना-लहरी' में लिखा है —

> अभिषि सुरापी घोर तापी नीच पापी-मुख,
> रविजा तिहारी बूद लघु अति ह्वै गयो।
> ताही छिन पल में अमल मल रूप भयो,
> कुटिल कुग्रह ताकी रेख-लेख ध्वै गयो॥
> 'ग्वाल' कवि कीरति सुचीरति दिसान जाति,
> दूतन की चित्र का चलाँकी चित्त च्वै गयो।
> चारमुख चद्रधर चाहत चितोत ताहि,
> चारन के देखत ही चार भुज ह्वै गयो॥

इन्होंने अतिम दो पक्तियों में पद्माकर की ऐसी नकल की है कि उनके दोष तक इसमें आ गये हैं।

लछिराम ने 'गंगा-लहरी' के अनुकरण पर 'सरयू-लहरी' लिखी है, जिसका एक छन्द आगे उद्धृत किया जाता है :—

गरल कपाल व्याल ज्वाल जटाजूट गंगा,
अरधंग वेष राममन्त्रहि पढावै है।
'लछिराम' राम गंग संग देव-देवनि है,
डमरू त्रिसूल कर त्रिरद बढ़ावै है।।
सौहैं श्री अवध घोर पापिन सुरापिन को,
संकर त्रिरचि बूढ़े बैल पै चढ़ावै है।
छोरि अंग अंबर अडबर विभूति माल,
गजखाल कवर बघबर उढ़ावै है।।

ये पंक्तियाँ 'गंगा-लहरी' की निम्न पंक्तियों से मिलती-जुलती हैं :—

लैहै छीन अंबर दिगंबर के जोरावरी,
बैल पै चढ़ाइ हेरि सैल पै चढावैगी।
मुण्डन के माल की भुजंगन के जाल की,
सु गंगा गजखाल की खिलत पहिरावैगी।।

पद्माकर की भाषा की नकल की चेष्टा तो इन्होंने की है; परन्तु सफलता नहीं मिली है। निम्न पंक्तियाँ मिलाइये :—

चन्द्रकला चुनी चूनरी चारु दई पहिराइ सुनाइ सु होरी।
बेंदी विसाखा रची 'पद्माकर' अंजन आँजि समाजि के रोरी।।
लागी जबै ललिता पहिरावन कान्ह को कंचुकी केसरि-बोरी।
हेरि हरे मुसकाइ रही अँचरा मुख दै वृषभान किसोरी।।
(पद्माकर)

होरी मैं साँवरे को गहिकै बरजोरी सखी तिय-वेष बनाई।
भूषण-भार सँवारि भले हरी कंचुकी झालरैं मोतिन छाई।।

मद हस्यौ 'लछिराम' तहीं बलि घाँघरे चूनरि की रुचिराई।
काजर दै कहि राधिका सों अवलोकिये नन्द की छोहरी आइ॥
(लछिराम)

दोनों में कृष्ण को स्त्री रूप में सजाने का वर्णन है। परन्तु पद्माकर के शब्द सौष्ठव, भाव एवं भाषा के समक्ष लछिराम कहाँ टिक सकते हैं। ब्रजभाषा की कविता में 'तिय वेस बनाई', रूप पूर्वी प्रयोग है।

ग्वाल कवि ने 'जगद्विनोद' के अनुकरण पर 'रसरंग' की रचना की है। इसमें कहीं कहीं पद्माकर के ही भाव थोड़े उलट फेर के साथ ज्यों के त्यों रख दिये गए हैं —

यह लात चलावनी हाय दैया हर एक को नाहिं छुहावनि है।
सुनी तेरी तरीफ मिलावनी की हित तेरे सुमाल पुहावनी है॥
कवि 'ग्वाल' चराय लै आवनी ह्या फिर बाधनो पौरि सुहावनी है।
मनभावनी दै हौ टहावनी में यह गाय तुही पै दुहावनी है॥
(रसरंग)

इसे पद्माकर के निम्नांकित छन्द से मिलाइए —

जब लौं घर को धनी आवैं घरै तब लौं तो यहूँ चित दैब करो।
'पद्माकर' ये बछरा अपने बछरान के संग चरैबो करो॥
अरु औरन के घर तें हम सों तुम दूनी दुहावनी लैबो करो।
नित साँझ सवेरे हमारी हहा हरि! गैया भला दुहि जैबो करो॥

ग्वाल ने भाव भाषा के अनुकरण की चेष्टा तो की है, परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली है। गढ़े हुए एवं भरती के शब्दों के कारण इनके छन्दों की भाषा भारी भरकम और बेढब हो गयी है।

पद्माकर की 'गंगा-लहरी' की रचना-शैली ने 'काली कवि' 'गंगा-गुण मंजरी' की रचना की है, जिसके पद, भाव, भाषा सभी 'गंगा-लहरी' की समता में आते हैं —

आवत बिसेस चढ़ि वृषभ खगेसन पै,
निज पति वेष देखि लेहु, लखि लाखौ री।
'काली कवि' कोट घट पातक हरी .कौ,
जिन अमर-सरी की लहरी कौ नीर चाखौरी ॥
प्रगट दिखात सब हर-से हरी-से कहूँ,
बदल परैगो तो भरैगो कोन साखौ री।
सीख लै हमारी ये, उमा री! ओ रमा री!
वा पुरानी औ मुरारी के चिन्हारी डार राखौ री।

काली कवि का ऋतु-वर्णन भी बड़ा सरस हुआ है, जो पद्माकर के ऋतु-वर्णन की समता करता है। उनका वसंत-वर्णन देखिए :—

पुहुप परागन की पगरी परी है छूटि,
उघरि परे हैं दल दावन किनारे के।
फहर फवे हैं फेल फूँदने गुलाबन के,
हगन दवे हैं मद मदन दबारे के॥
'काली' कवि सारी के समूहन छिके हैं मग,
झूमत झुके हैं घूम घूमत घुमारे के॥
मन्द मन्द आवत समीरन सुगन्ध अन्ध,
देखौ फैल फन्द जे बसन्त मतवारे के॥

द्विजदेव ने इनका इस प्रकार अनुकरण नहीं किया, जैसा ग्वाल तथा लछिराम ने। द्विजदेव स्वयं काव्य-गुण-पारखी थे, भाषा के मूल तत्व को उन्होंने पहचाना था और अपनी प्रतिभा के बल से अपनी रचनाओं को चमत्कृत कर दिया था। उनका एक छन्द देखें :—

औरे भाँति कोकिल चकोर ठौर-ठौर बोलै,
औरै भाँति सबद पपीहन के ह्वै गये।

# श्रृंगार

## ( जगद्विनोद से )

### नायिका-निरूपण

सवैया (नायिका)

जाहिरे जागति-सी जमुना जब बूड़ बहै उमहै वह वेनी।
त्यों 'पदमाकर' हीर के हारनि गंग-तरंगन को सुखदेनी॥
पायन के रँग सों रँगि जाति-सी भाँति-ही-भाँति सरस्वति-सेनी।
पैरे जहाँई-जहाँ वह बाल तहाँ-तहाँ ताल में होति त्रिवेनी॥

दोहा (नायिका)

सहज सहेलिन सों जु तिय, बिहँसि-बिहँसि बतराति।
सरद-चन्द की चाँदनी, मन्द परति सी जाति॥

### स्वकीया

कवित्त (स्वकीया)

सोभित स्वकीया-गन-गुन-गनती में तहाँ,
तेरे नाम ही की एक रेखा रेखियतु है।
कहै 'पदमाकर' पगी यों पति-प्रेम ही में,
पदुमिनि तो सी तिया तू ही पेखियतु है॥
सुवरन-रूप जैसो तैसो सील-सौरभ है,
याही तें तिहारो तन धन्य लेखियतु है।
सोने में सुगन्ध न सुगन्ध में सुन्योरी सोनो,
सोनो औ सुगन्ध तो में दोनों देखियतु है॥

दोहा (स्वकीया)

खान-पान पीछू करति, सोवति पिछिले छोर।
प्रान-पियारे तें प्रथम, जगति भावती भोर॥

सवैया (मुग्धा)

ये अलि या बलि के अधरान में आनि चढ़ी कछु माधुरई-सी।
ज्यों 'पदमाकर' माधुरी त्यों कुच दोउन की चढ़ती उनई सी॥
ज्यों कुच त्यों ही नितम्ब चढ़े कछु ज्यों ही नितम्ब त्यों चातुरई-सी।
जानि न ऐसी चढ़ाचढ़ि में किहि धौं कटि बीच ही लूटि लई-सी॥

दोहा (मुग्धा)

पल पल पर पलटन लगे, जाके अंग अनूप।
ऐसी इक ब्रजबाल पै, वो कहि सकत सरूप॥
यह अनुमान प्रमानियतु, तिय-तन यौवन जोति।
ज्यों मेहँदी के पात में, अलख ललाई होति॥

कवित्त (अज्ञातयौवना)

ये अलि हमैं तौ बात गात की न जानि परै,
बूझति न काहे या में कौन कठिनाई है?
कहै 'पदमाकर' क्यों अंग न समाति आगी?
लागी काहू टोहि? जागी उर में उचाई है॥
तौऽब तजि पायनि चली है चपलाई कितै?
बावरी बिलोकै क्यों न आँखिन में आई है।
मेरी कटि मेरी भटू कौन धौं चुराई?
तेरे कुचनि चुराई, कै नितबनि चुराई है॥

सवैया (ज्ञातयौवना)

चौक में चौकी जराय जरी तिहि पे खरी बार बगारति सौंधे।
छोरि धरी हरी कन्चुकी न्हान को अंगन तें जगे जाति के कौंधे।
छाइ उरोजन की छबि यो 'पदमाकर' देखत ही चकचौंधे।
भाजि गई लरिकाई मनो लरि कै करि के दुहूँ दुन्दुभि औंधे॥

सवैया (ज्ञातयौवना)

ये वृषभान-किशोरी भई इतै हो बद न दक्खिन कहावै।
त्यों 'पदमाकर' दोउन में नवरंग तरंग अनंग की छावै॥

दौरैं दुहूँ दुरि देखिवे कों दुति देह दुहूँ की दुहून को भावै।
ह्याँ इनके रस-भीने बड़े दृग ह्याँ उनके मसि भीजति आवै ॥

सवैया (नवोढ़ा)

राजि रही उलही छवि सो दुलही दुरि देखत ही फुलवारी।
त्यों 'पदमाकर' बोलै हँसै हुलसै बिलसै मुखचन्द-उज्यारी ॥
ऐसे समै कहुँ चातक की धुनि कान परी डरपी वह प्यारी।
चौंकि चकी चमकी चित में चुप ह्वै रही चंचल अचलवारी ॥

सवैया (विश्रब्ध-नवोढ़ा)

जाहि न चाह कहूँ रति की सु कछू पति को पतियान लगी है।
त्यों 'पदमाकर' आनन में रुचि कानन भौंहि कमान लगी है ॥
देति पिया न छुवै छतियाँ बतियाँन में तो मुसुक्यान लगी है।
प्रीत मै पान खवाइवे को परजंक के पास लों जान लगी है ॥

सवैया (मध्या)

आई जु चालि गुपाल घरै, ब्रजबाल बिसाल मृनाल-सी बाँही।
त्यो 'पदमाकर' सूरति में रति छ्वै न सकै कित हूँ परछाँहीं ॥
सोभित सभु मनो उर-ऊपर मौज मनोभव की मन माँही।
लाज बिराजि रही अँखियान में प्रान मे कान्ह जुबान में नाही ॥

कवित्त (प्रौढ़ा)

रति बिपरीत रची दंपति गुपति अति,
मेरे जानि मानि भय मनमथ-नेजे तें।
कहै 'पदमाकर' पगी यों रस-रग जा में,
खुलि गे सु अंग सब रंगनि अमेजे तें ॥
नीलमनि-जटित सुबेंदा उच्च कुच पै, पर्‌यो है
टूटि ललित ललाट के मजेजे तें।
मानो गिर्‌यो हेमगिरि-स्रृङ्ग पै सुकेलि करि,
कढ़ि कै कलंक कलानिधि के करेजे तें।

सवैया (रतिप्रीता)

लै पट पीतम के पहिरै पहिराइ पिया चुनि चूनरी खासी।
त्यों 'पदमाकर' साँझ ही तैं सिगरी निसि केलि कला परगासी॥
फूलत फूल गुलाबन के चटकाहट चौंकि चली चपला-सी।
का इ के काननि आँगुरी नाइ रही लपटाइ लवंगलता सी।

दोहा (रतिप्रीता)

करति केलि पिय हिय लगी, कोकनिनि अररेनि।
बिमुद कुमुद लौं ह्वै रही, चद मदुमति देखि॥

सवैया (आनंदसमोहिता)

रीति रची बिपरीति रची रति प्रीतम सग अनग भरी में।
त्यों 'पदमाकर' टूटे हरा ते सरासर सेज परे सिगरी में॥
यों करि केलि बि मोहित ह्वै रही आनँद की सुघरी उतरी में।
नीवी औ बार सँभारिबे को सुमइ सुधि नारि को चारि घरी में॥

कवित्त (मध्या धीरा)

पीतम के सग ही उमगि उड़ि जैबे को,
न एती अग अगनि पच्छ पखियाँ दई।
कहै 'पदमाकर' ने आरती उतारे चौर ढारैं,
श्रम हारे पैन ऐसी सखियाँ दई॥
देखि हग द्वै ही सों न नेकहू अघैये,
इन ऐसे मुखमुख में भपाक भखियाँ दई।
काजे कहा राम स्याम आनन बिलोकिबे कों,
बिरचि बिरचि न अनत अँखियाँ दई॥

दोहा (मध्या धीरा)

जा जिय में सो जीभ में, रमन रावरे ठौर
आज काल्हि के नरन के, जीभ कछू जिय और॥

### कवित्त (मध्या अधीरा)

भूले-से भ्रमे-से काहि सोचत श्रमे-से,
अकुलाने-से बिकाने-से ठगे-से ठीक ठाये हौ।
कहै 'पदमाकर' सु गोरे-रङ्ग-बोरे दृग,
थोरे-थोरे अजब कुसुम्भी करि ल्याये हौ॥
आगे कों धरत पीछे को परत पग,
भोर ही तें आज कछु और छवि छाये हौ।
कहाँ आये? तेरे धाम, कौन काम? घर जानि,
तहाँ जाउ, कहाँ! जहाँ मन धरि आये हौ॥

### कवित्त (मध्या धीराधीरा)

ए वलि कहौ हो किन! का कहत कंत अरि?
रोष तज, रोष कै कियो मै का अचाहे को!
कहे 'पदमाकर' यहै तो दुख दूरि करौ,
दोष न कछू है तुम्हैं नेह निरबाहे को॥
तो पै इत रोवति कहा हौ! कहो कौन आगे!,
मेरेई जु आगे किये आँसुन उमाहे को।
को हौ मै तिहारी!, तू तौ मेरी प्रानप्यारी, अजी
होती जौ पियारी तब रोती कहौ काहे कौ?॥

### कवित्त (प्रौढ़ा धीरा)

जगर-मगर दुति दूनी केलि-मन्दिर में,
बगर-बगर धूप-अगर बगारयौ तू।
कहै 'पदमाकर' त्यों चद ते चटकदार,
चुम्बन में चारु मुखचंद अनुसारयौ तू॥
नैनन में बैनन में सखी और सैनन मे,
जहाँ देखौ तहाँ प्रेम पूरन पसारयौ तू।
छपत छपायें तऊ छल न छबीली अब,
उर लगिबै की बार हार न उतारयौ तू॥

कवित्त (प्रौढ़ा अधीरा)

रोष करि पकरि परोस तें लियाइ घरे,
पी को मानप्यारी भुज-लतनि भरै भरै।
कहै 'पदमाकर' ए ऐसो दोष कीजै फेरि,
सखिन समीप यों सुनावति खरै-खरै॥
यों छल छुपावै बात हँसि बहरावै, तिय
गदगद कंठ दृग आँसुन भरै भरै।
ऐसी धन धन्य, धनी धन्य है सु ऐसो जाहि,
फूल की छरी सो खरी हनति हरै-हरै॥

कवित्त (प्रौढ़ा धीराधीरा)

छवि छलकन-भरी पीक पलकन त्यों ही,
श्रमजल-कन अलकन अधिकाने ज्वै।
कहै 'पदमाकर' सुजान रूपखानि तिया,
ताकि-ताकि रही ताहि आपुहि अजाने ह्वै॥
परसत गात मनभावन के भावती की,
गई चढ़ि भौंहैं रहीं ऐसी उपमाने छ्वै।
मानो अरविंदन पै चंद को चढ़ाइ दीन्हीं,
मान-कमनैत बिन रोदा की कमानी द्वै॥

कवित्त (ज्येष्ठा-कनिष्ठा)

दोऊ छवि छाजतीं छबीली मिलि आसन पै,
जिनहिं बिलोकि रह्यो जात न जितै जितै।
कहै 'पदमाकर' पिछौहैं आइ आदर सों,
छलिया छबीलो छैल बासर बितै बितै॥
मूँदे तहाँ एक अलबेली के अनोखे दृग,
सुदृग मिचावनी के ख्यालनि हितै हितै।
नैसुक नवाइ ग्रीवा धन्य धन्य दूसरी को,
औचक अचूक मुख चूमत चितै चितै॥

## परकीया

### कवित्त (ऊढ़ा)

गोकुल के कुल के, गली के गोप गाँवन के,
जौ लगि कछू-को-कछू भारत भनैं नहीं ।
कहै 'पदमाकर' परोस-पिछवारन तें,
द्वारन तें दौरि गुन-औगुन गनै नहीं ॥
तौ लौं चलि चातुर सहेली आइ कोऊ कहूँ,
नीके कै निचोरै, ताहि करत मनै नहीं ।
हौं तो स्याम-रंग में चुराइ चित चोराचोरी,
बोरत तौ बोर्‌यो पै निचोरत बनै नहीं ॥

### सवैया (अनूढ़ा)

जाँव नहीं कुल गोकुल में अरु दूनी दुहूँ दिसि दीपति जागै ।
त्यों 'पदमाकर' जोई सुनै जहाँ सो तहँ आनँद में अनुरागै ॥
ए दई ऐसो कछू कर ब्यौंत जु देखें अदेखिन के दृग दागै ।
जा में निसंक ह्वै मोहन कों भरिये निज अंक कलंक न लागै ॥

### कवित्त (भूत-सूरतिसंगोपना)

आली हौं गई ही आज भूलि बरसने कहूँ
तापै तू परे है 'पदमाकर' तनैनी क्यों ।
ब्रज-बनिता वै बनितान पै रची है फाग,
तिन में जु ऊधमिनि राधा मृगनैनी यों ॥
घोरि डारी केसरि सुबेसरि बिलोरि डारी,
बोरि डारी चूनरि चुचात रंग-रनी ज्यों ।
मोहि झकझोरि डारी कंचुकी मरोरि डारी,
तोरि डारी कसनि बिथोरि डारी बैनी त्यों ॥

### सवैया (वर्तमान-सुरतिगोपना)

ऊधम ऐसो मचो ब्रज में सबै रंग-तरंग उमगनि सीचैं ।
त्यों 'पदमाकर' छज्जनि छातनि छ्वै छिति छाजतीं केसरि-कीचैं ॥

दै विचकी भरी मीजी तहाँ परे पीछे गोपाल गुलाल उलीचैं।
एक ही संग इहां रपटे सखी ये भये ऊपर हौं भई नीचैं॥

कवित्त (भविष्य-सुरतिगोपना)

आज तें न जैहौं दधि बेचन दुहाई खाँउ
भैया की, कन्हैया उत ठाढ़ोई रहत है।
कहै 'पद्माकर' त्यों साँकरी गली है अति,
इत उत भाजिबे को दाँउ ना लहत है॥
दौरि दधि-दान काज ऐसो अमनैक तहाँ,
आली बनमाली आइ बहियाँ गहत है।
भादों सुदी चौथ को लख्यो री मृगअंक या तें,
झूठ हू कलंक मोहि लागिबो चहत है॥

सवैया (वचन विदग्धा)

पिय पागे परोसिनि के रस में बस में न कहूँ बस मेरें रहैं।
'पद्माकर' पाहुनी-सी ननदी, न नदी तजे पै अजसेरे रहैं॥
दुख औरन यों का कहौं, को सुनै, ब्रज की बनिता दग फेरे रहैं।
न सखी घर साँझ-सबेरे रहैं, घनश्याम घरी-घरी घेरे रहैं॥

कवित्त (क्रिया विदग्धा)

बकुल निकुञ्जन में मञ्जुल महल-मध्य,
मोतिन की झालरैं किनारिन में कुरबिन्द।
आइ गे तहाँइ 'पद्माकर' पियारे कान्ह,
आनि जुरि गये त्यों चबाइन के नीचे वृन्द॥
बैठी फिरि पूतरी, अनूप ह्वै फिरंगन्है की,
पाठि दै पठैनी दग-दगनि मिले अनिंद।
आछे अवलोकि रही आये रस मंदिर में,
इंदीवर सुंदर गुबिन्द को मुखारविंद॥

सवैया (लक्षिता)

अजमंडली देखि सवै 'पदमाकर' ह्वै रही यों चुपचाप री है।
मनमोहन की बहियाँ में छुटी उपटी यह बेनी दिखा परी है॥
मकराकृत कुंडल की झलकैं इत हूभुज-मूल की छाप री है।
इनकी उनसे जौ लगी अँखिया कहिये तो हमैं कछू का परी है॥

सवैया (लक्षिता)

बीतिबे ही सु तौ बीति चुकी अब आँजती हौ किहि काज लुकंजन।
त्यो 'पदमाकर' हाल कहै मति लाल करौ दृग ख्याल के खंजन॥
रेखत कंचुकी के चुकी के बिच होत छिपायें कहा कुच-कंजन।
तोहि कलंक लगाइबे कौ लग्यो कान्हहिं के अधरान में अजन॥

सवैया (कुलटा)

यों अलबेली अकेली कहूँ सुकुमारि सिंगारिनि कै चलै कै चलै।
त्यों 'पदमाकर' एकन के उर में रसबीजनि व्वै चलै व्लै चलै॥
एकन सों बतराइ कछू छिन एकन को मन लै चलै लै चलै।
एकन कों तकि घूँघट में मुख मोरि कनैखिन दै चलै दै चलै॥

कवित्त (मुदिता)

वृन्दावन बीथिन बिलोकन गई ही जहाँ,
राजत रसाल वन ताल'रु तमाल को।
कहे 'पदमाकर' निहारत बन्योई तहाँ,
नेहिन को नेह प्रेम अदभुत ख्याल को॥
दूनो-दूनो बाढ़त सु पूनो की निसा में,
अहो आनँद अनूप-रूप काहू ब्रजबाल को।
कुञ्ज तें कहूँ कों सुनि कन्त को गमन,
लखि आगमन तैसो मनहरन गोपाल को॥

कवित्त (प्रथम अनुशयाना)

सूने घर परम परोसी के सुजान तिया,
आई सुनि-सुनि के परोसिन मनो अराति।

दोहा (रूपगर्विता)

निरखि नैन, मृग मीन से उठीं उरै मिलि भालि।
पर घर जाइ गँवाइ रिस, हौ आइ रस रालि॥

कवित्त (मुग्धा प्रोषितपतिका)

माँगि विदा लो दिन की चौते ने गोविंद,
तिय सो दिन समान छिन मान अकुलावै है।
कहै 'पदमाकर' छपाकर छपाकर तें,
बदन-छपाकर मलीन मुरझावै है॥
बूझत जु कोऊ कै 'कहा री भयो तोहि'
तब और ही को और कछू बेदन बतावै है।
आँसू सकै मोचि न सँकोच-बस आलिन में,
उलही बिरह-बेलि दुलही दुहावै है॥

सवैया (मुग्ध प्रोषितपतिका)

बालम के बिछुरे ब्रजबाल को हाल कह्यो न परै कछु हाँ हीं।
ह्वै सो गई दिन तीन ही में तब औधि लौं क्यों बचिहै छबि छाहीं॥
तीर-सो धीर समीर लगै 'पदमाकर' बूझि हू बोलति नाहीं।
चंद-उदौ लखि चंदमुखी मुसकन्द ह्वै पैठति मंदिर माँहीं॥

सवैया (मध्या प्रोषितपतिका)

अब ह्वै है कहा अरविंद सो आनन, इंदु के हाथ हवाले पर्यो।
'पदमाकर' भावैं न भावैं बनै जिय ऐसे कछूक कसाले पर्यो।
इक मीन बिचारो बिध्यो बनसी पुनि जाल के जाइ दुमाले परयो।
मन तो मनमोहन के सँग गो तन लाज-मनोज के पाले पर्यो॥

कवित्त (मध्या प्रोषितपतिका)

ऊबत हौ डूबत हौ डगत हौ डोलत हौ,
बोलत न काहे प्रीति रीतिन रितै चले।
कहे 'पदमाकर' त्यो उससि उसासन सौं,
आँसू वै अपार आइ आँखिन हतै चले।

औधि ही के आगम लौं रहत बनै तौ रहौ,
बीच ही क्यों बैरी बंध-बेदनि बितै चले।
एरे मेरे प्रान कान्ह प्यारे के चलाचल में,
तब तौ चलै न अब चाहत कितै चले ॥

कवित्त (प्रौढ़ा प्रोषितपतिका)

लागत वसन्त के सु पाती लिखी प्रीतम को,
प्यारी परबीन है "हमारी सुधि आनबी।
कहै 'पदमाकर' इहाँ को यों हवाल,
बिरहानल की ज्वाल सो दवानल तें मानबी॥
ऊब को उसासन को पूरो परगास, सो तौ
निपट उसास पौन हू तें पहिचानबी।
नैनन को ढंग सो अनंग-पिचकारिन तें,
गातन को रङ्ग पीरे पातन तें जानबी"

सवैया (परकीया प्रोषितपतिका)

न्यौते गये नँदलाल कहूँ सुनि बाल बिहाल वियोग की पेरी।
ऊतरु कौन हू के 'पदमाकर' दै फिरै कुंज-गलीन में फेरी॥
पावै न चैन सु मैन के बाननि होत छिनै-छिन छीन घनेरी।
बूझै जु कन्त कहै तौ यहै तिय, पीउ पिराति है पाँसुरी मेरी॥

सवैया (गणिका प्रोषितपतिका)

बीर अबीर अभीरन को दुख भाषै बनै न बनै बिन भाषैं।
त्यों 'पदमाकर' मोहन-मीत क पाये सँदेस न आठयें पाखैं॥
आये न आप न पाती लिखी मन की मन ही में रही अभिलाखैं
सीत के अन्त बसन्त लग्यो अब कौन के आगे वसन्त लै राखैं॥

कवित्त (मुग्धा खंडिता)

बैठी परजंक पै नवेली निरसक जहाँ
जागी जोति जाहिर जवाहिर की जागे ज्यों।

कवित्त (मध्या कलहांतरिता)

झालरनदार झुकि झूमत बितान बिथे,
गहब गलीचा अरु गुलगुली गिलम।
जगर मगर 'पदमाकर' सु दीपन की,
फैली जगा ज्योति चेलि मंदिर अखिल मैं॥
आवत तहाँ मनमोहन की लाल,
मैन जैसी कछू करी तैसी दिल की ही दिलमैं।
हेरि हरि बिलम, न लीन्हां हिल मिल मैं,
रही हौं हाय मिल मैं प्रभा की झिलमिल मैं॥

कवित्त (प्रौढ़ा कलहांतरिता)

ए अलि इक्त पाइ पाइन परे हे आइ,
हौं न तब हेरी या गुमान बजमारे सों।
कहै 'पदमाकर' वै रुठि गे सु ऐसी भई,
नैनन तें नींद गई हाय के दवारे सों॥
रैन दिन चैन है न मैन है हमारे बस,
ऐन मुख सूखत उसास अनुसारे सों।
प्रानन की हान सी दिखान सी लगी है हाय,
कौन गुन जानि मान कीन्हो प्रानप्यारे सों॥

सवैया (परकीया कलहांतरिता)

का सो कहा मैं कहौं दुख या मुख सूखतई है पियूष पिये तें।
त्यों 'पदमाकर' या उपहास को त्रास मिटै न उसास लिए तें॥
व्यापी बिथा यह जानि परी मनमोहन मीत सों मान किये तें।
भूलि हू चूकि परै जो कहूँ निहि चूक की हूक न जात हिये तें॥

सवैया (गणिका कलहांतरिता)

हीर के हार, हजारन को धन, देत हुते, सुख से सरसाने।
हौ न लयो 'पदमाकर' त्यों अरु बोली न बोल सुधारस-साने॥

वे चलि ह्याँ तें गये अनतैं, अब का हम आपनी बात बखानें।
आपने हाथ सो आपने पाँय पै पाथर पारि परयो पछिताने ॥

कवित्त (मुग्धा विप्रलब्धा)

खेल को बहानो कै सहेलिन के संग चलि,
आई केलि-मन्दिर लौं सुन्दर मजेज पर ।
कहै 'पदमाकर' तहाँ न पिय पायो तिय,
त्यो ही तन तै रही तमीपति के तेज पर ॥
बाढ़त बिथा की कथा काहू सो कछू ना कही,
लचकि लता-लौं गई लाज ही की लेज पर ।
बीरी परी बिथरि कपोल पर, पीरी परी,
धीरी परी, धाइ गिरी सीरी-परी सेज पर ॥

कवित्त (मध्या विप्रलब्धा)

पूर अंसुवान को रह्यो जो पूरि आँखिन में,
चाहत बढ्यो पै बढ़ि बाहिरे बहै नहीं ।
कहै 'पदमाकर' सु धोखे हू तमाल-तरु,
चाहति गह्यो पै होइ गहब गहै नहीं ॥
काँपि कदली-लौं या अली को अवलंब कहूँ,
चाहति लह्यौ पै लोकलाजनि लहै नही ।
कंत न मिले को दुख दारुन अनन्त पाइ,
चाहति कह्यो पै कछु काहू सो कहै नहीं ॥

कवित्त (प्रौढ़ा विप्रलब्धा)

आई फाग खेलन गुविन्द सों अनंद-भरी,
जा को लसै लक मजु मखतूल-ताग-सो ।
कहै 'पदमाकर' तहाँ न ताहि मिल्यो स्याम,
छिन में छबीली कों अनंग दह्यो दाग सो ॥
कौन करै होरी कोऊ गोरी समुझावै कहा,
नागरी कों राग लग्यो बिष-सो बिराग-सो ।

कदर-सी कठरि कपूर लाग्यो काग-सम,
गाज-सो गुलाब लाग्यो अरगजा आग-सो ॥

कवित्त (परकीया विप्रलब्धा)

गजन सु गुंज लाग्यो जैसो पीन-पुंज लाग्यो,
दीप गनि कुंज लाग्यो गुंजन सो गजि कै ।
कहै 'पदमाकर न तोज लाग्यो ज्वाल को,
पालन मराल लाग्यो नीर तीर तजि कै ॥
सुमन सु विष लाग्यो दूमन कदंब लाग्यो,
मोहि न विलंब लाग्यो आइ गेह तजि कै ।
मीजन मयंक लाग्यो मीत हू न अंक लाग्यो,
पंक लाग्यो पायनि कलंक लाग्यो भजि कै ॥

कवित्त (गणिका विप्रलब्धा)

निसि अँधियारी तऊ प्यारी परवीन चढ़ि,
माल के मनोरथ के रथ पै चली गई ।
कहै 'पदमाकर' तहाँ न मनमोहन सों,
भेंट भई सटकि सहेट तें अली गई ॥
चंदन सों चाँदनी सों चंद सो चमेलिन सों,
और बनबेलिन के दलनि दली गई ।
आइ हुती छैल के छलै कों छल-छंदन सों,
छैल तो छल्यो न आपु छैल सो छली गई ॥

सवैया (मुग्धा उत्कण्ठिता)

सोचै अनागम कारन कंत को मोचै उसासनि आँसु हू मोचै ।
मोचै न हेरि हरा हिय को 'पदमाकर' मोचि सकै न सँकोचै ॥
को चैत की इह चांदनी तें अलि याहि निबाहि बिथा अवलोचै ।
लोचै परी सियरी
बीती परीन खरी-खरी सोचै ॥

सवैया (मध्या उत्कंठिता)

आये न कंत कहाँ धौं रहे भयो भोर चहै निसि जाति सिरानी।
यों 'पदमाकर' बूझ्यो चहै पर बूझि सकै न सँकोच की सानी॥
धारि सकै न उतारि सकै, गुनि हार-सिंगार हिये हहरानी।
सूल-से फूल लगे फर पै तिय फूलछरी-सी परी मुरझानी॥

कवित्त (प्रौढ़ा उत्कंठिता)

सौतिन के त्रास तैं रहे धौं और वास तैं,
न आये कौन गास तैं प्यौ करु सो तलास तैं।
कहै 'पदमाकर' सुवास तैं जवास तैं,
सु फूलन की रास तैं जगो हैं महा सासतैं॥
चाँदनी-विकास तैं सुधाकर-प्रकास तैं, न
राखत हुलास तैं, न लाऊ खसखास तैं।
पौन करि आस तैं न जाउ उठि वास तैं,
अरी गुलाब-पास तैं उठाउ आसपास तैं॥

कवित्त (परकीया उत्कंठिता)

फागुन में का गुन विचारि ना दिखाई देत,
एती बार लाई उन कानन में नाइ आउ।
कहै 'पदमाकर' हितू जौ है हमारी,
तौ हमारे कहें वीर वहि धाम लगि धाइ आउ॥
जोरि जो धरी है बेदरद के दुआरे होरी,
मेरी बिरहागि की उलूकन लौं लाइ आउ।
ए री इन नैनन के नीर में अबीर घोरि,
बोरि पिचकारी चित-चोर पै चलाई आउ॥

सवैया (गणिका उत्कंठिता)

काहू कियो धौं, कहै, बस भावतो, काहू कहूँ धौं कछू छल छायो।
त्यों 'पदमाकर' तान-तरंगनि काहू किधौं रचि रङ्ग रिझायो॥

जानि परै न कछू गति आज की जा हित एतो बिलंब लगायो।
मोहन मो मन मोहिबे कौं किधौं मो मन को मनि-हार न पायो।

कवित्त (मुग्धा वासकसज्जा)

सोरह सिंगार कै नवेली की सहेलिन हूँ,
कीन्हीं केलि मन्दिर में कलपित केरै हैं।
कहै 'पदमाकर' सु पास ही गुलाब-पास,
खासे खसखास खुसबोइन की ढेरै हैं॥
त्यों गुलाब नीरन सों हीरन के हौज भरे,
दंपति मिलाप हित आरती उजेरै हैं।
चोखी चाँदनी में बिछी चौसर, चमेलिन के,
चंदन की चौकी चारु चाँदी के चँगेरै हैं॥

कवित्त (मध्या वासकसज्जा)

सजि ब्रजबाल नंदलाल सों मिलै के लिये,
लगनि लगालगि में लमकि लमकि उठै।
कहै 'पदमाकर' बिराग ऐसी चाँदनी सी,
चार्‌यो ओर चौकन में चमकि चमकि उठै॥
झुकि-झुकि झूमि झूमि झिलि झिलि झेलि झेलि,
झरहरी झापन में झमकि झमकि उठै।
दर दर देखो दरीखानन में दौरि दौरि,
दुरि दुरि दामिनी सी दमकि दमकि उठै॥

कवित्त (प्रौढ़ा वासकसज्जा)

चहचही चहल चहूँधा चारु चंदन की,
चंदक-चुनौन चौक-चौकनि चढ़ी है आब।
कहै 'पदमाकर' फराकत फरसबंद, फहरि
फुहारन की फरस फबी है फाब॥
मोद मदमाती मनमोहन मिलै के काज,
साजि मन मंदिर मनोज-कैसी महताब।

गोल गुल गादी गुल गिलमें गुलाब गुल,
गजक गुलाबी गुल गिंदुक गुले गुलाब ॥

कवित्त (परकीया वासकसज्जा)

सोसनी दुकूलनि दुराये रूप-रोसनी है,
बूटेदार घाँघरी की घूमनि घुमाइ कै।
कहै 'पदमाकर' त्यों उन्नत उरोजन पै,
तङ्ग अँगिया है तनी तनिन तनाइ कै
छज्जन की छाँह छपि छैल के मिलै के हेतु,
छाजति छपा में यों छबीली छबि छाइ कै।
ह्वै रही-खरी है छरी फूल की छरी-सी छपि,
साँकरी गली में फूल-पाँखुरी बिछाइ कै ॥

सवैया (गणिका वासकसज्जा)

नीर के तीर, उसीर के मन्दिर, धीर समीर जुड़ावत जीरे।
त्यों 'पदमाकर' पङ्कज-पुञ्ज पुरैनि के पात परे जनु पीरे ॥
ग्रीषम की क्यों गनै गरमी गज-गौहर चाह गुलाब-गँम्भीरे।
बैठी बधू बनि बाग-बिहार में बार बगारि सिवार-से सीरे ॥

कवित्त (मुग्धा स्वाधीनपतिका)

चाह भर्‌यो चंचल हमारो चित नौल बधू,
तेरी चाल चंचल चितौनि में बसत है।
कहै 'पदमाकर' सु ,चंचल चितौनि हू ते,
औझकि-उझकि झझकनि में फसत है ॥
औझकि-उझकि झझकनि तें सुरझि बेस,
बाही की गंहनि माहिं आइ बिलसत है।
बाहीं की गहनि तें सु नाहीं की कहनि आये,
नाहीं की कहनि तेंसु नाहीं निकसत हैं ॥

सवैया ( मुग्धा स्वाधीनपतिका )

सनरैवो करो वतरैवो करो इतरैवो करा करो जाई चहो।
'पदमाकर' आनँद दीबो करो, रस लीबो करो मुख सों उमहो ॥
कछू अन्तर राखो न राखो चहो पर या बिनती इक मेरी गहो।
अब ज्यों हिय में नित बैठी रहो त्यों दया करि कै ढिग बैठी रहो ॥

सवैया (प्रौढ़ा स्वाधीनपतिका)

मो मुख बीरी दई सु दई सु रही रचि साधि सुगन्ध घनेरो।
त्यों 'पदमाकर' केसरि-खौरि करा तौ करो सो सुहाग है मेरो ॥
बेना गुही तौ गुहा मन-भावते मालिन माँग सँवारि सवेरो।
और सिंगार सजे तो सजौ इक हार हहा हियरे मति गेरो ॥

कवित्त (परकीया स्वाधीनपतिका)

उझकि झरोखा ह्वै झमकि झुकि झाकी बाम,
स्याम की बिसरि गई खबरि तमासा की।
कहै 'पदमाकर' चहूँधा चैत-चाँदनी सी,
फैलि रही तैसिये सुगन्ध सुभ स्वासा की॥
तैसी छबि छकत तमोर की तरौनन की
वैसी छबि बसन की बारन की बासा की।
मोतिन की माँग की मुखो की मुसुक्यानहू की,
नैनन की नथ की निहारिबे की नासा की ॥

सवैया (गणिका स्वाधीनपतिका)

छाक-छकी छतिया धर कै दरकै अँगिया उचकैं कुच नीके।
त्यों 'पदमाकर' छूटत बार हू टूटत हार सिंगार जे ही के ॥
संग तिहारे न भूलहुँगी फिरि भूलि हूँ दौरे सु जीवन जी के।
यों मिचकी मचको न हहा लचकै करिहा मचकैं मिचकी के ॥

सवैया (प्रौढ़ा अभिसारिका)

कौन है तू कित जाति चली बलि बीती निसा अधराति प्रमाने।
हौं 'पदमाकर' भावती हौं निज भावते पै अब ही मुहि जाने ॥

तौं अलबेली अकेली डरै किन ? क्यौं डरौं ? मेरी सहाय के लानै ।
है सखि संग मनोभव-सो भट कान लौं बान-सरासन तानै ॥

कवित्त (प्रौढ़ा अभिसारिका)

घूँघट की घूमके सु झूमके जवाहिर के,
झिलमिल झालर की भूमि लौं झुलत जात ।
कहै 'पदमाकर' सुधाकरमुखी के
हीर-हारन में, तारन के तोम-से तुलत जात ॥
मंद-मंद हैकल मतंग-लौं चलेई, भलै
भुजन-समेत भुज-भूषन डुलत जात ।
घाँघरे झकोरनि चहूँघा खोरि-खोरि हू में,
खूब खसबोइ के खजाने-से खुलत जात ॥

कवित्त (परकीया अभिसारिका)

मौलसिरी मंजुल की गुञ्जन की कुञ्जन की,
मो सौं घनस्याम कहि काम की कथै गयो ।
कहै 'पदमाकर' अथाइन कों तजि-तजि,
गोप-गन निज-निज गेह के पथै गयो ॥
सोच मति कीजै ठकुरानी हम जानी, चित
चंचल तिहारो चढ़ि चाह कै रथै गयो ।
छीन न छपा कर छपाकरमुखी तू चल,
चदन छपा कर छपाकर अथै गयो ॥

सवैया (गणिका अभिसारिका)

केसरि-रङ्ग-रङ्गी सिर-ओढ़नी काननि कीन्हे गुलाब-कली हौ ।
भाल गुलाल-भर्यो 'पदमाकर' अंगनि भूषित भाँति भली हौ ॥
औरन कों छलती छिन में तुम जाती न औरन सों जु छली हौ ।
फागु में मोहन को मन लै फगुवा में कहा अबलेन चली हौ ॥

## पद्माकर कवि

### कवित्त (दिवा अभिसारिका)

दिन कै सिंगार खोलि कीनो अभिसार है,
न जानि परी काहू कहाँ जाति चली छल सी।
कहै 'पद्माकर' न नाँक री सँकोरे जादि,
काँकरी पगनि लगैं पंकज के दल सी॥
कामद सो कानन कपूर ऐसी धूरि लगै,
पट-सो पहार नदी लागत है नल-सी।
धाम चाँदनी सो लगै, चंद-सो लगत रवि,
मग मखतूल सो मही हू मखमल सी॥

### सवैया (कृष्ण अभिसारिका)

साँवरी सारी सखी संग साँवरी साँवरे धारि विभूषन ध्वै कै।
त्यों 'पद्माकर' साँवरेई अंगरागनि आगी रची कुच द्वै कै॥
साँवरी रैन में साँवरी पै घहरै घनघोर घटा छिति छ्वै कै।
साँवरी पाँमरी की देखुहा बलि साँवरे पै चली साँवरी ह्वै कै॥

### कवित्त (शुक्ला अभिसारिका)

सजि ब्रजचंद पै चली यों मुखचंद जाको
चंद चाँदनी को मुख मंद-सो करत जात।
कहै 'पद्माकर' त्यों सहज सुगंध ही के
पुंज, बन कुंजन में कंज-से भरत जात॥
धरति जहाइ जहाँ पग है सु प्यारी तहाँ,
मंजुल मजीठ ही की माठ सी ढुरत जात।
हारन तें हीरे दरैं सारी के किनारन तें,
बारन तें मुकुता हजारन भरत जात॥

### सवैया (मुग्धा प्रवत्स्यत्प्रेयसी)

सेज परी सफरी-सी पलोटति ज्यों-ज्यों घटा घन की गरजै री।
त्यों 'पद्माकर' लाजन तें न कहै दुलही हिय की हरजै री॥

आली कछू को कछू उपचार करै पै न प्राइ सकै मरजै री।
जाहिँ न ऐसे समै मथुरै यह कोऊ न कान्हर को बरजै री॥

दोहा (मध्या प्रवत्स्यत्प्रेयसी)

सुनि सखीन मुख ससिमुखी, बलम जाहिंगे दूरि।
बूझ्यौ चहति बियोगिनी, जिय ज्यावन की मूरि।

कवित्त (प्रौवढ़ा प्रत्स्यत्प्रेयसी)

सौ दिन को मारग तहाँ कौ वेगि माँगि बिदा,
प्यारी 'पदमाकर' प्रभात राति बीते पर।
सो सुनि पियारी पिय-गमन बराइवे कौं,
आँसुन अन्हाई बैठि आसन सु तीते पर॥
बालम बिदेस तुम जात हौ तौ जाउ, पर
साँची कहि जाउ कब ऐहौ भौन-रीते पर?
पहर के भीतर कै दो पहर भीतर ही,
तीसरे पहर कैधौं साँझ हा बितीते पर॥

सवैया (प्रौढ़ा प्रवत्स्यत्प्रेयसी)

जात हैं तौ अब जान दै री छिन मे चलिवे की न बात चलैहैं।
जौ 'पदमाकर' पौन के झूँकनि क्वैलिया-कूकनि लौं सहि लैहैं॥
वे उलहे बन-बाग-बिहार निहारि-निहारि जबै अकुलैहैं।
जैहैं न फेरि फिरे घर ऐहैं सु गाँउ तें बाहर पाँउ न दैहैं॥

सवैया (परकोया प्रवत्स्यत्प्रेयसी)

जो उर-झार नहीं झरसी मृदु मालती-माल बहै मग नाखै।
नेहवती जुवती 'पदमाकर' पानी न पान कछू अभिलाखै॥
झाँकि झरोखे रही कब की दबकी वह बाल मनै-मन माखै।
कोऊ न ऐसो हितू हमरोजु परोसिन के पिय कों गहि राखै॥

दोहा (गणिका प्रवत्स्यत्प्रेयसी)

फबत फाग फजिहत बड़ी, चलन चहत जदुराय।
को फिरि जाँचि रिझाइबी, धुनि धमार की धाय॥

कवित्त (मुग्धा आगतपतिका)

कान सुनि आगम सुजान प्रानप्रीतम को,
आनि छलियान सजी सुंदरि के आस-पास।
कहै 'पदमाकर' सु पच्चन के हौज हरे,
ललित लबालब भरे हैं जल बास-बास॥
गूँदि गेंदे गुल गज गौहरनि गज, गुल,
गुपत गुलाबी गुन-गजरे गुलाबपास।
खासे खसखानि सुपौन पौनखाने खुले,
खस के खजाने खसखाने खूब खास-खास॥

सवैया (मध्या आगतपतिका)

नँदगाँव ते आइ गो नंदलला लखि लाड़िली ताहि रिझाइ रही।
मुख घूँघट घालि सकै नहिं माइके माइ के पीछे दुराइ रही॥
उचके कुच कोरन की 'पदमाकर' कैसी कछू छवि छाइ रही।
ललचाइ रही सकुचाइ रही सिर नाइ रही मुसुक्याय रही॥

कवित्त (प्रौढ़ा आगतपतिका)

आजु दिन कान्ह आगमन के बधाये सुनि,
छाये मग फूलनि सुहाये थल थल के।
कहै 'पदमाकर' त्यों आरती उतारिबे कों,
थारन मैंदीप हीरा हारन के छलके॥
कंचन के कलस भराये भूरि पन्नन के
ताने तुंग तोरन तहाँई झलाझल के।
पौरि के दुवारे तें लगाइ केलि मंदिर लौं।
पदमिनी पाँवड़े पसारे मखमल के॥

सवैया (परकीया आगतपतिका)

एकै चले रस गोरस लै अरु एकै चले मग फूल बिछावत।
त्यों 'पदमाकर' गावत गीत सु एकै चले उर आनँद छावत॥

ँदनंद निहारिवे को नंदगाँव को लोग चले सब धावत।
त कान्ह बने बन तें बर प्रान परै-से परोसिनि आवत॥

सवैया (गणिका आगतपतिका)

वत नाह उछाह-भरे अवलोकिवे कों निज नाटकसाला।
नचि गाइ रिझावहुँगी 'पदमाकर' त्यों रचि रूप रसाला॥
सुक मेरे सु मेरे कहे त्यों इते कहि बोलियो बैन बिसाला।
त बिदेस रहे हौ जिते दिन देहु तिते मुकुतान की माला॥

कवित्त (उत्तमा)

पाती लिखी सुमुखि सुजान 'पिय गोबिंद को,
"श्रीयुत सलौने स्याम सुखनि सने रहौ।
कहै 'पदमाकर' तिहारी छेम छिन-छिन
चाहियतु, प्यारे मन-मुदित घने रहौ॥
बिनती इती है कै हमेस हू मुहै तौ निज,
पाइन की पूरी परिचारिका गने रहौ।
याही में मगन मनमोहन हमारो मन,
लगनि लगाइ लाल मगन बनै रहौ"॥

कवित्त (मध्यमा)

जाके मुख सामुहे भयोई जो चहत मुख,
लीन्हो सो नवाइ डीठि पगनि अवाँगी री।
बैन सुनिबे कों अति व्याकुल हुते जे कान,
तेऊ मूँदि राखे मजा मन हू न माँगी री॥
झारि डार्‌यो पुलक प्रसेद हू निवारि डार्‌यो,
रोकि रसना हू त्यों भरी न कछू हाँगी री।
एते पै रह्यौ न मान मोहन लट्टू पै भट्टू,
टूक-टूक ह्वै कै ज्यों छटूक भई आँगी री॥

पद्माकर कवि

सवैया (प्रथमा)

हौं उरझाइ रिझाइबे को रसराग कवित्तन की धुनि छाई।
त्यों 'पदमाकर' साहस कै कबहूँ न विषाद की बात सुनाई॥
आपने हू न कियो अपराध सु आपने हाथनि सेज बिछाई।
त्यों परि पाइ मनाइ जऊ तऊ पापिनी को कछु पीर न आई॥

नायक निरूपण

सवैया (पति)

मंडप ही में फिरै मँडरात न जात कहूँ तजि नेह को औनो।
त्यों 'पदमाकर' तोहि सराहत, बात कहै जु कछू कहूँ कौनो॥
ये बड़भागिनी तो सी तुही बलि, जो ललि राउरो रूप सलौनो।
ब्याह ही तें भये काह लट्ट, तब ह्वैहै कहा जब होइगो गौनो॥

सवैया (अनुकूल)

एक ही सेज पै सोवत हैं 'पदमाकर' दोऊ महासुख साने।
आपने में तिय मान कियो यह देखि पिया अति ही अकुलाने॥
लागि परे पै तऊ यह जानत पाद्दि रही हम सो रिस-ठाने।
मानपियारी के पा परि कै करि सौंह गरे को गरे लरटाने॥

कवित्त (दक्षिण)

देखि 'पदमाकर' गोविन्द को, अनद-भरी,
आइ सनि साँझ ही तें हरषि हिलोरे में।
ए हरि हमारेई हमारे चलो भूलन को,
हेम के हिंडोरनि झुनान के झकोरे में॥
या विधि बधून के सुबैन सुनि बनमाली,
मृदु मुसुक्याइ कह्यो ने हकै निहोरे में।
कालिह चलि झूलैंगे तिहारेई तिहारी सौंह,
आज तुम झूलो ह्या हमारेई हिंडोरे में॥

सवैया (धृष्ट)

ठानै मजा अपने मन की उर आनै न रोषहू दोष दिये को।
त्यों 'पदमाकर' जोबन के मद पै मद है मधुपान किये को॥
राति कहूँ रमि आयो घरै डर मानै नहीं अपराध किये को।
गारि दै मारि दै टारत भावती भावतो होत है हार हिये को॥

सवैया (शठ)

करि कंद को मंद दुचंद भईं फिरि राखन के उर दागती हैं।
'पदमाकर' स्वादु सुधातें सिरे मधु तें महा माधुरी जागती हैं॥
गनती कहाए री अनारन की ये अँगूरन तें अति पागती हैं।
तुम बातें निसीठी कहौ रिस में मिसिरी तें मिठी हमें लागती हैं॥

सवैया (वैशिक)

छोरत ही जु द्वरा के दिनौ-छिन छाये तहाँई उमंग अदा के।
त्यो 'पदमाकर' जे सिसकीन के सार घने मुख मोरि मजा के॥
दै धन धान धनी अब तें मन ही मन मानि समान सुधा के।
बारि-बिलासिनी ती के जपै अखरा-अखरा नखरा-अखरा के॥

सवैया (मानी)

बाल बिहाल परी कब की दबकी यह प्रीति की रीति निहारौ।
त्यों 'पदमाकर' है न तुम्हें सुधि कीन्हो जो बैरी बसन्त बगारौ॥
ता ते मिलौ मनभावती सों बलि ह्याँ तें हहा बच मानि हमारौ।
कोकिल की कल बानी सुने पुनि मान रहैगो न कान्ह तिहारौ॥

सवैया (वचन चतुर)

दाऊ न नंद बबा न जसोमति न्यौते गये कहूँलै सँग भारी।
हौं हूँ इकै 'पदमाकर' पौरि में, सूनी परी खरी निसिकारी॥
देखै न क्यों कढ़ि तेरे सुखेत पै धाइ गई छुटि गाइ हमारी।
ग्वाल सो बोलि गोपाल कह्यो सु गुवालिनि पै मनोमोहिनी डारी॥

## पद्माकर कवि

### सवैया (क्रिया-चतुर)

आई सु न्यौनि बुलाई भली दिन चारि को, काहि गोपाल की मावै।
त्यों 'पद्माकर' काहू कह्यो के चला चलि वेगि ही सासु बुलावै॥
सो सुनि रोकि सकै क्यों तहाँ गुरु लोगन में यह व्यौत बनावै।
पाहुनी चाहै चल्यो जबही तबही हरि सामुहे छींकत आवै॥

### कवित्त (मनभिन्न)

नैनन ही सैन करै बीरी मुख दैन करै,
लैन करै चुंबन पसारि प्रेम पाता है।
कहै 'पदमाकर' त्यों चातुरी चरित्र करै,
चित्त करै सौहैं जो विचित्र रतिराता है॥
हाव करै भाव करै विविध विभाव करै
बूझै क्यों न एत पै अबूझन को आता है।
ऐसी परवीनि का कियो जो यह पूरुष तो,
सीस बिषे जानो महामूरख विधाता है॥

### सवैया (चित्र दर्शन)

चित्र के मंदिर तें इक सुंदरो क्यों निकसै जिन्हें नेह नसा है।
त्यों 'पदमाकर' खोलि रही दृग बोलै न बोल अडोल दसा है।
भृङ्गी प्रसंग तें भृङ्गी ही होत जु पै जग में जड़ कीट महा है।
मोहन मीत को चित्र लखें भई चित्र ही सी तो विचित्र कहा है।

### सवैया (चेटक सखा)

साजि सकेत में साँवरे को सु गयाई जहा हुती ग्वालि सयानी।
त्यों 'पदमाकर' बोलि कह्यो चलि बैठी कहा इत ही अकुलानी॥
तौ लौं न जाइ तहा पहिरै किन जौ लौं रिसात न सासु जिठानी।
हौं लखि आयौं निकुंज ही में परी कालिह जु रावरी माल हिरानी॥

## दूती

### कवित्त (उत्तमा दूती)

गोकुल की गलिन-गलीन यह फैली बात,
कान्हैं नंदरानी वृषभानु-भौन ब्याहतीं।
कहै 'पदमाकर' यहाँई त्यों तिहारो चलै,
ब्याह को चलन, यहै साँवरो सराहतीं॥
सोचति कहा हौ कहा करिहैं चवाइन ये,
आनँद की अवली न काहे अवगाहतीं।
प्यारो उपपति ते सु होत अनुकूल,
तुम प्यारी परकीया तें स्वकीया होन चाहतीं॥

### सवैया ( मध्यमा दूती )

बैन सुधा-से सुधा-सी हँसी बसुधा मे सुधा की सटा करती हौ।
त्यों 'पदमाकर' वारहि बार सु वार वगारि लटा करती हौ॥
बीर बिचारे बटोहिन पै बिन काज ही तौ यों छटा करती हौ।
बिज्जु-छटा-सी अटा पै चढी सुकटाछनि घालि कटा करती हौ॥

### सवैया ( अधमा दूती )

ऐहै न फेरि गई जो निसा तनु-यौवन है घन की परछाहीं।
त्यों 'पदमाकर' क्यों न मिलै उठि यों निबहैगो न नेह सदा हीं॥
कौन सयान जो कान्ह सुजान सों ठानि गुमान रही मन माहीं।
एक जु कंज-कली न खिली तौ कहा कहूँ भौंर कों ठौर है नाहीं॥

### सवैया (स्वयंदूती)

रूसि कहूँ कढि माली गयो गई ताहि मनावन सासु उताली।
त्यों 'पदमाकर' न्हान नदी जे हुतीं सजनी सँग नाचनवाली॥
मंजु महाछबि की कब की यह नीकी निकुञ्ज परी सब खाली।
हौं यहि बाग की मालिनि हौं, इत आये भले तुम हौ बनमाली॥

ऋतु वर्णन

कवित्त ( बसंत वर्णन )

और भाँति कुंजन में गुंजरत भौंर भीर,
और डौर झौरन में बौरन के ह्वै गये।
कहै 'पदमाकर' सु और भाँति गलियान,
छलिया छबीले छैल और छबि छ्वै गये॥
और भाँति बिहँग-समाज में आवाज होति,
ऐसे ऋतुराज के न आज दिन ह्वै गये।
और रस और रीति और राग और रंग,
और तन और मन और बन ह्वै गये॥

कवित्त (ग्रीष्मवर्णन)

फहरे फुहार नीर, नहर नदी सी बहै,
छहरैं छबीन छाम छीटिन की छाटी हैं।
कहै 'पदमाकर' त्यों जेठ की जलाकैं तहाँ,
पावै क्यों प्रवेश वेस बेलिन की बाटी हैं॥
बार हू दरीन बीच बार हू तरफ तैसी,
बरफ बिछाई ता पै सीतल सु पाटी हैं।
गजक अँगूर को अँगूर सों उचौहैं कुच,
आसव अगूर को अँगूर ही की टाटी हैं॥

कवित्त (पावस वर्णन)

चचला चमाकैं चहूँ ओरन तें चाह भरी,
चरजि गई ती फेरि चरजन लागी री।
कहै 'पदमाकर' लवगन की लोनी लता,
लरज गई ती फेरि लरजन लागी री॥
कैसे धरौं धीर बीर त्रिबिध समीरैं तन,
तरज गइ ती फेरि तरजन लागी री।

घुमडि घमंड घटा घन की घनेरी अवै,
गरजि गई तो फेरि गरजन लागी री ॥

कवित्त (शरद् वर्णन)

खनक चुरीन की त्यों ठनक मृदंगन की,
रुनुक-झुनुक सुर नूपुर के जाल को।
कहै 'पदमाकर' त्यों बाँसुरी की धुनि मिलि,
रह्यो बँधि सरस सनाको एक ताल को ॥
देखतै बनत पै न कहत बनै री कछू,
विविध विलास यों हुलास यह ख्याल को।
चन्द छवि रास चाँदनी को परकास, राधिका,
को मन्दहास रासमंडल गोपाल को ॥

कवित्त (हेमंत-वर्णन)

अगर की धूप मृगमद की सुगन्ध वर,
बसन विसाल जाल अंग ढाँकियतु है।
कहै 'पदमाकर' सु पौन को न गौन जहाँ,
ऐसे भौन उमँगि उन्मगि छाकियतु है ॥
भोग औ सँयोग हित सुरत हिमन्त ही में,
एते और सुखद सुहाय बाकियतु है।
तान की तरंग तरुनापन तरनि-तेज,
तेल तूल तरुनि तमोल ताकियतु है ॥

कवित्त (शिशिर-वर्णन)

गुलगुली गिलमैं गलीचा हैं गुनीजन हैं,
चाँदनी हैं चिक हैं चिरागन की माला हैं।
कहै 'पदमाकर' त्यों गजक गिजा हैं सजी,
सेज हैं सुराही है सुरा हैं और प्याला हैं ॥
सिसिर के पाला को न व्यापत कसाला तिन्हैं,
जिनके अधीन एते उदित मसाला हैं।

तान तुक ताला है बिनोद के रसाला है,
सुबाला है दुसाला है बिसाला चित्रसाला है ॥

आलम्बन

सवैया (स्तम्भ)

या अनुराग की फाग लखौ जहँ रागती राग किसोर किसोरी।
त्यों 'पदमाकर' घाली घली फिरि लाल ही लाल गुलाल की झोरी॥
जैसी कि तैसी रही पिचकी कर काहू न केसरि रंग में बोरी।
गोरिन के रँग भीजि गो साँवरो साँवरे के रँग भीजि गै गोरी॥

सवैया (स्वर भंग)

जाति हुती निज गोकुल को हरि आयो तहाँ लखि कै मग सूना।
ता सों कह्यो 'पदमाकर' यों अरे साँवरे बावरे तैं हम छू ना।
आज धौं कैसी भई सजनी उत वा बिष बाल कह्योई कहूँ ना।
आनि लगायो हियो सो हियो भरि आयो गरो कहि आयो कछू ना॥

सवैया (कम्प)

साजि सिगारनि सेज पै पारि भई मिस ही मिस ओट जिठानी।
त्यों 'पदमाकर' आइ गो कंत इकंत जबै निज तंत में जानी॥
सो लखि सुंदरि सुंदर सेज तें यों थरकी थिरकी थहरानी।
बात के लागे नहीं ठहरात है ज्यो जलजात के पात पै पानी॥

सवैया (वैवर्ण्य)

सापने हूँ न लख्यो निसि में रतिभौन ते गौन कहूँ निज पी को।
त्यों 'पदमाकर सौति-सँजोगनि रोग भयो अनभावती जी को॥
हारन सो हहरात हियो मुकता सियरात सु बेसर ही को।
भावते के उर लागी जऊ तऊ भावती को मुख ह्वै गयो फीको॥

दोहा (अश्रु)

आखिन ते आँसू उमड़ि, परत कुचन पर आन।
जनु गिरीस के सीस पर, डारत भाव मुक्तान॥

### सवैया (जंभा)

आरस सो रस सो 'पदमाकर' चौंकि परे चख चुंबन के किये।
पीक-भरी पलकैं झलकै अलकैं छवि छूटि छटा लिये॥
सो मुख भाखि सकै अबको रिस कै कस कै मसकै छतिया छिये।
राति की जागी प्रभात उठी अँगरात जँभात लजात लगी हिये॥

## हाव

### कवित्त (लीला हाव)

रूप रचि गोपी को गोविन्द गो तहाँई जहाँ,
कान्ह बनि बैठी कोऊ गोप की कुमारी है।
कहै 'पदमाकर' यो उलट कहै को कहा,
कसकै कन्हैया कर मसकै जु प्यारी है॥
नारी तैं न होत नर नर तैं न होत नारी,
विधि के करेहूँ कहूँ काहू ना निहारी है।
काम-करता की करतूत या निहारी जहाँ,
नारी नर होत नर होत लख्यो नारी है॥

### सवैया (विलास हाव)

आई हौ खेलन फाग इहाँ वृषभानपुरी तैं सखी सँग लीने।
त्यों 'पदमाकर' गावतीं गीत रिझावतीं हाव बताइ नवीने॥
कंचन की पिचकी कर में लिये केसरि के रँग सो अँग भीने।
छोटी-सी छाती छुटी अलकैं अति बैस की छोटी बड़ी परवीने॥

### सवैया (विच्छित्ति हाव)

मानो मयंकहि के पर्यङ्क निसंक लसै सुत बंक मही को।
त्यों 'पदमाकर' जागि रह्यो जनु भाग हिये अनुराग जु पी को॥
भूषन भार सिँगारन सौं सजि मोतिन को जु करे मुख फीको।
ज्योति को जाल बिसाल महा तिय भाल पै लाल गुलाल को टीको॥

सवैया (किलकिंचित हाव)

फागुन में मधुपान-समै 'पदमाकर' आइ गे स्याम सँघाती।
अंचल ऐंचि, उँचाय भुजा भरे, भूमि गुलाल की ख्याल सुहाती॥
भूठिहु दै झझकाइ तहाँ तिय झाकी झुकी झझकी मदमाती।
रूसि रही घरी आधिक लौं तिय झारत अंग निहारत छाती॥

कवित्त (ललित हाव)

साजि ब्रजचन्द पै चली यों मुखचन्द जा को,
चन्द चाँदनी को मुख मन्द सो करत जात।
कहै 'पदमाकर' त्यों सहज सुगन्ध ही के,
पुंज बन कुंजन में कंज से भरत जात॥
धरत जहाँई जहाँ पग है पियारी तहाँ,
मंजुल मजीठ ही के माठ से ढरत जात।
बारन तें हीरा सेत सारी की किनारन तें,
हारन तें मुक्ता हजारन झरत जात॥

सवैया (मोहायित हाव)

रूप दुहूँ को दुहून सुन्यो सु रहैं तब तें मनो संग सदा हीं।
ध्यान में दोऊ दुहून लखैं हरखैं अंग अंग अनंग उछाहीं॥
माहिं रहे बच क यों दुहुँ 'पदमाकर' और कछू सुधि नाहीं।
मोहन को मन मोहनी में बस्यो मं हनी को मन मोहन माहीं॥

सवैया (विहृत हाव)

सुन्दरि को मनि-मन्दिर में लखि आये गोविन्द बने बड़भागे।
आनन ओर सुधाकर-सी 'पदमाकर' आनन-ज्योति के जागे॥
औचक ऐंचत अंचल के पुलकी अँग-अंगहि यों अनुरागे।
मैन के राज में बोलि सकी न मह ब्रजराज की लाज के आगे॥

कवित्त (कुट्टमित हाव)

अवन के ऐंचे चल परती ढगचल कों,
चखना तें चखन चलै न मनि हारे को।

कहै 'पदमाकर' परै-सी चौंकि चुम्बन मे,
छलनि छपावै कुच-कुंभनि किनारे को।
छाती के छुए पै परै राती-सी रिसाइ,
गलवाहीं के किये पै नाहि-नाहियै उचारे को।
ही करति सीतल तमासे तुंग ती करति,
सी करति रति में बसी करति प्यारे को॥

सवैया (बोधक हाव)

दोऊ अटान चढ़े 'पदमाकर' देख दुहूँ को दुवौ छवि छाई।
त्यों व्रजबाल गोपाल तहाँ बनमाल तमालहि की दरसाई॥
चन्दमुखी चतुराई करी, तब ऐसी कछू अपने मन भाई।
अंचल ऐंचि उरोजन तें नंदलाल को मालती-माल दिखाई॥

संचारी भाव

सवैया (ग्लानि)

आजु लखी मृगनैनी मनोहर बैनी छुटी छहरे छवि छाई।
टूटे हरा हियरा पै परे 'पदमाकर' लीक-सी लङ्क लुनाई॥
कै रति-केलि सकेलि सुखै कलि केलि के भौन तें बाहिर आई।
राजि रही रति आँखियन में मन में धौं कहा तन में सिथिलाई॥

कवित्त (शंका)

मोहि लखि सोवत बिथोरि गो सुबेनी बनी,
तोरि गो हिये को हरा छोरि गो सुगैया को।
कहै 'पदमाकर' त्यों घोरि गो घनेरो दुख,
बोरि गो बिसासी आज लाज ही की नैया को॥
अहित अनैसो ऐसो कौन उपहास यहै,
सोचत खरी मैं परी जोवत जुन्हैया को।
बूझैंगी चवैया तब कैहों कहा दैया, इत,
पारि गो को मैया मेरी सेज पै कन्हैया को॥

पद्माकर कवि

कवित्त (असूया)

आवत उसासी, दुख लगै, और हाँसी सुनि,
दासी उर लाइ कहो को नहिं दहा कियो।
कहै 'पदमाकर' हमारे जान ऊधो उन,
तात को न मात को न भ्रात को कहा कियो॥
कलकिनि कूबरी कलङ्किनि कुरूप तैसी,
चेटकिनि चेरी ताके चित्त को कहा कियो।
राधिका की कहवत कहि दीजो मोहन सो,
रसिक सिरोमनि कहाइ धौं कहा कियो॥

सवैया (श्रम)

यै रति रंग थकी थिर ह्वै परजंक में प्यारी परी सुख पाइ कै।
त्यों 'पदमाकर' स्वेद के बुंद रहे मुक्ताहल से तन छाइ कै॥
बिन्दु रचे मेहँदी के लसैं कर, तापर यों रह्यो आनन आइ कै।
इंदु मनो अरबिंद पै राजत इन्द्रवधून के वृन्द बिछाइ कै॥

कवित्त (चिन्ता)

झिलत झकोर रहै जीवन को जोर रहै,
समद मरोर रहै सोर रहै तब सों।
कहै 'पदमाकर' तकैयन के मेह रहे, नेह,
रहै नैननि न मेह रहै दब सों॥
बाजत सुबैन रहै उनमद नैन रहै,
चित में न चैन रहै चातकी के रब सों।
गेह में न नाथ रहै द्वारे ब्रजनाथ रहै,
को लौं मन हाथ रहै साथ रहै सब सों॥

सवैया (मोह)

दोउन की सुधि है न कछू सुधि वाही बलाइ में बूड़ि बही है।
त्यों 'पदमाकर' दीन मिलाइ क्यों चाग चबाइन की उमही है॥

आजुहि की वा दिखादिख में दसा दोउन की नहिं जाति कही है।
मोहन मोहि रह्यो कब को कब की वह मोहनी मोहि रही है॥

सवैया (स्वप्न)

काँपे रहै छिन सोवत हू कछु भाखिबो मो अनुसारि रही है।
त्यों 'पदमाकर' रंच मुमंचनि स्वेद के बुंदनि धारि रही है॥
वेप दिखादिखी के सुख में तन की तनको न सँभार रही है।
जानति हौं सखि सापने में नँदलाल कों नारि निहारि रही है॥

सवैया (स्मृति)

कंचन-आभा कदंब-तरे करि कोऊ गई तिय तीज तयारी।
हौं हू गई 'पदमाकर' त्यों चलि औचक आइगो कुंजबिहारी॥
हेरि हिँडोरे चढ़ाइ लियो कियो कौतुक सो न कह्यो परै भारी।
फूलनवारी पियारी निकुंज की झूलन है नव झूलनवारी॥

सवैया (व्रीडा)

कालिह परौं फिरि साजनी स्याम सु आजु तौ नैन मिला लै।
त्यों 'पदमाकर' प्रीति-प्रतीति में नीति की रीति महा उर सालै॥
ये दिन यौवन के तौ इतै सुन लाज इती तु करेगी कहा लै।
नेक तो देखन दै मुखचंद-सो चंद्रमुखी मति घूँघुट घालै॥

कवित्त (निद्रा)

चहचही चुभकी चुभी है चौंक चुंबन की,
लहलही लाँबी लटै लपटीं सु लङ्क पर।
कहै 'पदमाकर' मजानि मरगजी मंजु,
मसकी सु आँगी है उरोजन के अंक पर॥
सोई सरसार यों सुगंधनि समोई, स्वेद
सीतल सलोने लोने वदन मयंक पर।
किन्नरी नरी है कै छरी है छबिदार परी,
टूटि-सी परी है कै परी है परजंक पर॥

सवैया (अपस्मार)

जा छिन तें सुनि औचरे रावरे लागे कटाच्छ कछू अनियारे।
त्यों 'पदमाकर' ता छिन तें, तिय सों अँग-अँग न जात सँभारे॥
ह्वै हिय हायल घायल-सी घन घूमि गिरी परी प्रेम तिहारे।
नैन गये फिरि फैन बहै मुख चैन रह्यो नहिं मैन के मारे॥

कवित्त (आवेग)

आई संग आलिन के ननद-पठाई नीठि,
सोहति सोहाई सीस ईंडुरी सुपट की।
कहै 'पदमाकर' गँभीर जमुना के तीर,
लागी घट भरन नवेली नेह अँटकी॥
ताही समै मोहन सु बाँसुरी बजाई,
ता मैं मधुर मलार गाई ओर बंसीवट की।
तान लगे लट की रही न सुधि घूँघट की,
घाट की न औघट की बाट की न घट की॥

सवैया (उन्माद)

आपहि आप पै रूसि रहा कबहूँ पुनि आपुहि आप मनावै।
त्यों 'पदमाकर' लाल तमालनि भेंटिबे को कबहूँ उठि धावै॥
जो हरि रावरो चित्र लखै तो कहूँ कबहूँ हँसि हेरि बुलावै।
ब्याकुल बाल सु आलिन सों कह्यो चाहै कछू तो कछू कहि आवै॥

कवित्त (जड़ता)

आज बरसाने की नवेली अलबेली बधू,
मोहन बिलोकिबे को लाज काज ह्वै रही।
छज्जा-छज्जा झाँकती झरोखनि झरोखनि है,
चित्रसारी-चित्रसारी चन्द-सम ध्वै रही॥
कहै 'पदमाकर' त्यों निकसो गोविन्द ताहि,
जहाँ-वहाँ इक टक ताकि घरी द्वै रही।

छज्जावारी छकी-सी उझकी-सी झरोखावारी,
चित्र कैसी लिखी चित्रसारीवारी ह्वै रही।

स्थायी भाव

कवित्त (रति)

सजन लगी है वहूँ कवहूँ सिँगारन को,
तजन लगो है कहूँ ऐसे बसवारी की।
चखन लगी है कछू चाह 'पदमाकर' त्यों,
लखन लगी है मंजु मूरत मुरारी की॥
सुन्दर गोबिन्द-गुन गनन लगी है कछू,
सुनन लगी है बात बाँकुरे बिहारी की।
पगन लगी है लगी लगन हिये सों नेकु,
लगन लगी है कछू पी की प्रानप्यारी की॥

रस-निरूपण

सवैया (वियोग शृङ्गार)

ऐसी न देखी सुनी सजनी घनी बाढ़त जात वियोग की बाधा।
त्यों 'पदमाकर' मोहन को तब तें कल है न कहूँ पल आधा॥
लाल गुलाल घलाघल में दृग ठोकर दै गई रूप अगाधा।
कै गई कै गई चेटक-सी मन लै गई लै गई लै गई राधा॥

कवित्त (गुण-कथन)

हौं हूँ गई जान तित आइ गो कहूँ ते कान्ह,
आनि बनितान हूँ को झपकि झलो गयो।
कहै 'पदमाकर' अनंग की उमंगन सों,
अंग-अंग मेरे भरि नेह को छलो गयो॥
ठानि ब्रजठाकुर ठगोरिन की ठेलाठेल,
मेला के मझार हित-हेला कै भलो गयो।
छाह छ्वै छला छ्वै छिगुनी छ्वै छरा छोरन छ्वै,
छलिया छबीलो छैल छाती छ्वै चलो गयो॥

सवैया (गुलाल-वर्णन)

चोरिन गोरिन में मिलि कै इतै आई हौ हाल गुवाल कहाँ की।
को न बिलोकि रह्यो 'पद्माकर' या तिय की अवलोकनि बाँकी॥
बीर अबीर की धुँधुरि में बहु फेर्‌यो पै मुख फेरि कै झाँकी।
कै गई काटि करेजन के कतरे कतरे पतरे करिहाँ की॥

कवित्त (मुग्धा)

ए हो नंदलाल ऐसी व्याकुल परी है बाल,
हाल ही चलौ तौ चलौ जोरि जुरि जायगी।
कहै 'पद्माकर' नहीं तौ ये झकोरे लगैं
ओरे-लौं अचाक बिन घोरे घुरि जायगी॥
सीरे उपचारन घनेरे घनसारन सौं,
देखत ही देखौ दामिनी लौं दुरि जायगी।
तौ ही लग चैन जौ लौं चेती है न चंदमुखी,
चेतैगी कहूँ तौ चाँदनी में चुरि जायगी॥

फुटकर

कवित्त (नेत्र वर्णन)

रूप रस चाखैं मुख रसना न राखैं फेरि,
भाखैं अभिलाखैं तेज उर के मझारतीं॥
कहै 'पद्माकर' त्यों कानन बिना हू सुनैं,
आनन के थान यों अनोखे अंग धारतीं॥
बिन पग दौरैं बिन हाथन हथ्यार करैं,
कोर के कटाछन घटा-से झूमि झारतीं।
पाँखन बिना ही करैं लाखन ही बार आँखैं,
पावतीं जौ पाँखैं तौ कहा धौं करि डारतीं॥

कवित्त (तिल वर्णन)

कैधौं रूप रासि में सिँगार रस अंकुरित,
अंकुरित कैधौं तम तड़ित जुन्हाई में।

कहै 'पदमकार' त्यों किधौं काम कारीगर,
नुकता दियो है हेम-फरद सुहाई में ॥
कैधौं अरविन्द में मलिंद-सुत सोयो आनि,
ऐसो तिल सोहत कपोल की लुनाई में।
कैधौं पर्‌यो इंदु में कलिंदि-जल-विंदु आइ,
गरक गुविंद किधौं गोरी की गोराई में ॥

सवैया (परकीया)

धारत ही बन्यो ये ही मतो गुरु-लोगन को डर डारत ही बन्यो।
हारत ही बन्यो हेरि हियो, 'पदमाकर' प्रेम पसारत ही बन्यो ॥
वारत ही बन्यो काज सबै अब यों मुखचन्द उघारत ही बन्यो।
टारत ही बन्यो घूँघट को पट नन्दकुमार निहारत ही बन्यो।

कवित्त (हिंडोला-वर्णन)

सावन सखी री मनभावन के संग चलि,
क्यों न चलि झूलत हिंडोरे नवरंग पर।
कहै 'पदमाकर' त्यों जोबन उमंगन तें,
उमँग उमंगित अनंग अंग-अंग पर ॥
चोखी चूनरी के चारो तरफ तरंग तैसी,
तंग अँगिया है तनी उरज उतंग पर।
सौतिन के बदन बिलोके बदरंग आज,
रंग है री रंग तेरी मेहँदी सुरंग पर ॥

कवित्त (हिंडोला-वर्णन)

तीर पर तरनि-तनूजा के तमाल-तरे,
तीज की तयारी ताकि आई तकियान मैं।
कहै 'पदमाकर' सो उमँगि उमङ्ग उठी,
मेहँदी सुरंग की तरंग तखियान मैं ॥
प्रेम-रंग-बोरी गोरी नवल किसोरी तहाँ,
झूलत हिंडोरे यों सुहाई सखियान मैं।

हाकल

निज नायिकनि सु सिंगार है, अरि लरत बीर अपार है।
लखि दीन करुना रस है, लल कतल में बीभत्स है॥

हाकल

दिग बिजय काज महूम की, अरि देस-देसनि धूम की।
गूजर गलीम नगाइ कै सु बुँदेलखंडहि आइ कै॥

हाकल

दतिया सु प्रथम दबा दई, लखडी सु मनमानी लई।
फिरि मुलुक नृप छत्रसाल को, दाबो प्रबल रिपु-जाल को॥

हाकल

यह अजैगढ़ बलहीन है, जहँ अरिन डेरा कीन है।
यह सुनि सुदिन सुत पाइ कै, डंका दियो सिव ध्याइ कै॥

हाकल

सुभ सत्त सूरन के बजे, रनधीर बीर सबै सजे।
दुंदुभि धुकारैं धुक्कहीं, अरि सुनत जित तित लुक्कहीं॥

हाकल

बुंदेल बिदित जहान में, जेल रत अति घमासान में।
बघरू बघेले करचुली, जिनकी न बात कहूँ डुली॥

हाकल

अब और दल कहँ लौ गनौ, सब ठाकुरन सों है सनौ।
गज्जत अजैगढ़ के निकट, सब एक एकन ते निकट॥

हाकल

धुनि घोर दुँदुभि गज्जहीं जे सुनत बारिद लज्जहीं।
फहरे गयद निसान है जिनको जगत जग आन है॥

हरिगीतिका

हकत ममत निज दल सकल, ह्वै करि भटन का पिट्ठि पै।
हर हरषि भाषत तहाँ राखत, डिट्ठि अरि की डिट्ठि पै॥

पृथु-रित्ति नित्त सुवित्त दे, जग जित्ति कित्ति अनूर की।
बर बरनिये बिरदावली, हिम्मत बहादुर भूप की।।

हरिगीतिका

फहरे निसान दिसानि जाहिर, धवल दल बकपंत-से।
हय हियनि हर्षित बीरवर, फूले फिरत रतिकंत-से।।
बलके सवार सपूत अति, मजबूत नद-से उमड़ि कै।
अरि-ओर ओरे-सी परें, घन-घोर गोली घुमड़ि कै।।

हरिगीतिका

इमि साजि दल हिम्मतबहादुर नृपति बीर हला कियो।
जहँ प्रबल बीर पमार अर्जुन सिंह हर्षित है हियो।।
अति कठिन भूम मवास-ऊपर, अजैगढ़ सोहै किलो।
चहुँ ओर पर्वत बन सघन, तहँ आयु डीलनि नृप मिलो।।

हरिगीतिका

जहँ और फौजन को न सपनेहु, चित्त जैबे को चलै।
तहँ नृपति बीर अनूप गिरि, पैठो हरषि हाँकत दलै।।
जिमि राम रघुवर दौरि कै, निरसंक लङ्का पर गयौ।
हिम्मतबहादुर बीर त्यों, रन-बीर धावत तहँ भयौ।

हरिगीतिका

एकै न गोलिन को गनत, धँसि गोल गोला-से गये।
अरि कट्टि कट्टि बिकट्टि चट्ट, सु बट्टि भूतन को दये।।
धम-धम धमाधम झम झमाझम धम धमाधम, ह्वै ठई।
चम-चम चमाचम तम तमातम, छम छमाछम छिति छुई।।

हरिगीतिका

सिर कटहिं, सिर कटि धर कटहिं, धर कटि सुहय कटि जात हैं।
इमि एक-एकहि बार में, कटि भट भये ,बिन गात हैं।।
इत सुभट भूप अनूप गिरि के, उकढ़ि आये ताउ सों।
उत सुभट अर्जुन के बिकट, फिरि लरि परे अति चाउ सों।।

त्रिभङ्गी

तहँ दुहुँ दल उमड़े, घन-सम घुमड़े, झुकि-झुकि झुमड़े ओर भरे।
तकि तबल तमके, हिम्मत हके, बीर बमके, रन उमरे॥
बोलत रन करखा, बाढ़त हरषा, बाननि बरषा, होन लगी।
उलझारत सेलै, अरि गन ठेलै, सीननि पेलै, रारि जगी॥

त्रिभङ्गी

बंदी-जन बुल्ले, रोसन खुल्ले, डग डग डुल्ले, कादर हैं।
धौंसा धुनि गाजे, दुहुँ दिसि बाजे, सुनि धुनि लाजे, बादर हैं॥
नीसान सु फहरैं, इत-उत छहरैं, पावक लहरैं-सी लगतीं।
छुवती नहिं नाका, मनहु सलाका, धुजा पताका नभ जगतीं॥

त्रिभङ्गी

कढ़ि घोटनवारे, बीर हँकारे, यारे-यारे, अभिरि परे।
किरवाननि झारैं, सुभट बिदारैं, नेकु न हारैं, रोष भरे॥
कानन लौं तानै, गहि कम्मानै, अरिन निसानै, सिर घालै।
सुख अति पैठै, मुच्छुनि ऐंठै, भुजनि उमैठै, गहि ढालै॥

त्रिभङ्गी

अवन की मूकैं, घालि न चूकैं, दै-दै कूकैं, कूदि परे।
गहि गरदन पटकैं, नेकु न भटकैं, झुकि झुकि झटकैं, उमङ्ग भरे॥
रन करत अङङ्गे, सुभट उमङ्गे, बैरिन भङ्गे, करि झपटैं।
सीसन की टक्कर, लेत उटक्कर, घालत छुक्कर, लरि लपटैं॥

त्रिभङ्गी

तहँ हत्था हत्थी, मत्था-मत्थी, लत्था लत्थी, माचि रही।
काटैं कर कट कट, बिकट सुभट भट, का सौं लटपट जाति कही॥
गहि कठिन कटारी, पेलत यारी, रुधिर-पनारी, बमकि बहैं।
पाजर खिन खनकैं, ठेलत ठनकैं, तन छनि-छनिकैं, हिलगि रहैं॥

### त्रिभंगी

गहि-गहि पिसकब्जैं, मरमनि गब्जैं, तकि तकि नब्जैं काटत हैं।
कम्मर तें छूरे काटत पूरे रिपु-तन रूरे काटत हैं।।
करि धक्का-धक्की, हक्का-हक्की, ढक्का-ढक्की, मुदित मची।
घनघोर घुमंडी रारि उमंडी, किलकत चण्डी, निरखि नची।।

### त्रिभंगी

एकै गहि माले, करि मुख लाले, सुभट उताले, घालत हैं।
तोरत रिपु-ताले, आले-आले रुधिर-पनाले, चालत हैं।।
झारत असि छुरि जे, बीरनि उर जे पुरजे-पुरजे, कोटि करैं।
हथियारनि सूटैं, नेकु न हूटैं, खल-दल कूटैं, लपकि लरैं।।

### त्रिभंगी

तहँ धुक्का-धुक्की, मुक्का-मुक्की, डुक्का-डुक्की होन लगी।
रन इक्का-इक्की, झिक्का-झिक्की, फिक्का-फिक्की, जोर लगी।।
काटत चिलता हैं, इमि असि वाहैं, तिनहिं सराहैं, बीर बड़े।
टूटैं कटि झिलमैं, रिपु रन बिलमैं, सोचत दिल मैं, खड़े-खड़े।।

### त्रिभंगी

ढालन के ढक्के, लागत पक्के, इत-उत थक्के, फरकत हैं।
इक-इक्कनि टक्के, बधे झमक्के, तननि तमक्के, तरकत हैं।।
ललकत फिरि लपटे, छत्तिन छपटे, करि अरि चपटे, पेरत हैं।
भट भुजनि उखारत, छिति पर डारत, हँसि हुड़कारत, हेरत हैं।।

### त्रिभंगी

ठोंकत भुजदंडनि, उमड़ि उदंडनि, प्रबल प्रचंडनि, चाउ-भरे।
करि खल-दल खंडन, बैरि बिहंडन, नौऊ खंडन, तुनस करे।।
दस्ताने करि-करि, धीरज धरि-धरि, जुद्ध उमरि भरि हंकत हैं।
पैठत दुरदन में, रोपित रन में, नेकु न मन में, संकत हैं।।

त्रिभंगी

निकसी तहँ लग्गीं, उमड़ि उमग्गीं, जगमग जग्गीं, दुहूँ दल मैं।
भातिन भातिन की, बहु जातिन की, अरि-घातिन की, करि कलम॥
तहँ चढ़ी मगरबी, अरि गन चरबी, चापट करबी-सी काटै।
जगि जोर जुनब्बी पहरत फब्बी, मुहनि गब्बी, फर फाटै॥

त्रिभंगी

बिज्जुल सी चमकैं, धाइन धमकैं तोलन तमकैं, चद्दर का।
चद्दरी सु लग्गीं, जगमग जग्गीं, लपकत लग्गीं, नहिं सरकी॥
सोहैं सुभ सुरती, चलत न मुरती, रन में फुरती, बीरन की।
लीलम तरवारैं, झुकि झुकि झारैं, तकि-तकि मारैं, धीरन को॥

त्रिभङ्गी

गजकुम्भ बिदारैं, सु लहरदारैं, लहरनि धारैं, बिधि बिधि की।
लखि लालूदारैं, रिपु गन हारैं, मोल बिचारैं, नव निधि की॥
तहँ खुरासानी, जग की जानी, चलैं कृपानी, चकचौधैं।
निज्जाब हु खानी, दलनिधिवानी, बिज्जु समानी, रन कौंधैं॥

त्रिभङ्गी

अधिबर नादौटैं, चलट न लौटैं, मुड़नि मौटैं, फाटि फरैं।
बर मानाशाही, भटनि दुबाही, झिलमनि बाहीं, नहीं झरैं॥
सुभ समर सिरोही, जगमग जोही, निकसत सोही, नागिन-सी।
चर-चरी सुकत्ती तीखन तत्ती, हनि रिपु-छत्ती, नहिं बिनसी॥

त्रिभङ्गी

गजत गज दुरदा, सहित बगुरदा, गालिब गुरदा, देखि परे।
तुरकन के तेगा, तोरन तेगा, सकल सुबेगा, रुधिर भरे॥
जगजगी जिहाजी, मञ्जुल माजी, सरन साजी, सोभि रही।
दिपती दरियाई, दोनौं धाई, भटनि चलाई, अति उमही॥

### त्रिभङ्गी

तहँ सु अलेमानी, और न सानी, सहित निसानी, चलन लगीं।
सु लुनेद-हु-खानी, पूरित पानी, दिपति दिखानी, जगा-जगी ॥
दोनौं दिसि निसरी, लखत न बिसरी, मंजुल मिसरी, तरवारैं।
तन तोरन रुपती, गालिब गुपती, झक-झक झुरतीं, झुकि झारैं ॥

### त्रिभंगी

हेरी नु हलब्बी, सुंडनि गब्बी, सीस हलब्बी-सी चमकैं।
तहँ करत झपट्टे, वीर सुभट्टे, चहुँ दिसि पट्टे, घमघमकैं ॥
चालत अति चाँड़े, गहि-गहि गाड़े, रिपु-सिर भाँड़े-से, जु हरैं।
करि-करि चित चोपैं, रन पग रोपैं, धरि-धरि धोपैं, धूम करैं ॥

### त्रिभङ्गी

जिनने अति भारे बखतर फारे, दलनि दुधारे, बहु निकसे।
तहं सु बरदमानी, खड़ग पिहानी, हर बरदानी, हेरि हंसे ॥
चरबी जिन चाबी, दबहिं न दाबी, दिपति दुताबी, देखि परै।
मुरि मुरत कहूँ ना, उत्तम ऊना, सब तें दूना, काट करै ॥

### त्रिभङ्गी

चौलत जे काँचैं, रन में नाचैं, सुदम तमाचैं, ओप धरैं।
रञ्जित रन-भूमी, सु खड़ग रूमी, रिपु सिर तूमी-सी कतरै ॥
असिवर अँगरेजैं, चलि-चलि तेजैं, अरि-गन भेजैं, सुरपुर को।
लखि फर्कसाहीं, बीरन बाहीं, खल भजि जाहीं, दुर-दुर को ॥

### त्रिभङ्गी

रिपु-झलनि झकोरैं मुख नहिं मोरैं, बखतर तोरैं, तब्बरी।
इक-एकनि मारैं धरि ललकारैं, गहि तरवारैं, अकब्बरी ॥
इमि बहु तरवारैं, काढ़ि अपारैं, सुचित बिचारैं, नहि आवैं।
तिन के बहु खनके, झिलमनि झनके, ठनकत ठनके, तन तावैं ॥

त्रिभङ्गी

चक्रकै चलावैं, दुहुँ दिसि धावैं, हयनि कुदावैं, फूल-भरे।
गजदल उपाटै, हौदा काटै, बाधि सपाटै, श्रात उमरे॥
हथियन सों हत्थी, मत्था मत्थी, रारि अकत्थी, करन लगे।
जञ्जीरनि घालै, सुँड उछालै, बाँधत फालै, फर उमगे॥

त्रिभङ्गी

गहि गहि हय झटकैं दिसि दिसि पटकैं, भू पर पटकैं, नहिं भटकैं।
पायनि सों पालैं, अरिगन मीलैं, जम से दीसैं नहिं भटकैं॥
प्रति गजनि उठेलैं, दवनि ठेलैं, ह्वै मद मेलैं ओर करैं।
जुग्गन सों जूटैं, नेकु न टूटैं, फिरि फिरि लूटैं, फेरि लरैं॥

त्रिभङ्गी

करि करि इमि टक्कर, हटत न यक्कर, तन तकि तक्कर, तोरत हैं।
मारे रन गुडनि, भाल सुंडनि, तऊ न मुडनि, मोरत हैं॥
इमि कुञ्जर लपटैं, दुहुँ दल दपटैं, झुकि-झुकि झपटैं झूमत हैं।
अरि पटल पटा से, फारत त्रास, सु घन घटा से, घूमत हैं॥

त्रिभङ्गी

तहँ अर्जुन बंका, करि-करि हंका, दुरद निसंका, हूलत है।
बैठो सु किनारैं, सुच्छनि तारैं, रनछबि छायैं, फूलत हैं॥
झारत हथियारन, मारत वारन, तन तरवारन लगत हँसै।
पैरत मालन को, सर जालन को, असि घालन को धमकि धँसै।

त्रिभङ्गी

तहँ मचा हराहड, भद खभाभड, छिलक धकाधक, हाह रहा।
तब नूर कनूर गिरि सुभट छिनु तिरि, अर्जुन सों भिरि, खड्ग गहा॥
हय दाबि कन्हैया, सु मरि कन्हैया, सु गजकन्हैया पर पहुँचो।
झारत तरवारैं तकि-तकि मारैं, प्रबल प्रहारैं, गहि पहुँचो॥

### त्रिभङ्गी

पट्टक्यौ गज पर तें, उमड़ि उभर तें, अरि-सिर धर तें, काटि लियौ।
रिपु-रुण्ड धरा को, अरपत ताको, हरहि हरा को, मुंड दियौ॥
लहि अर्जुन-मत्था, गिरिजा-नत्था, अमित अकत्था, नचत भयौ।
डम डमरु बजावै, त्रिरदनि गावै, भूत नचावै, छबिन छयौ॥

### त्रिभङ्गी

किल किलकत चंडी, लहि निज खंडी, उमड़ि उमंडी, हरषति है।
सँग लै बैतालनि, दै-दै तालनि, मञ्जा जालनि, करषति है॥
जुग्गिननि जमाती, हिय हरषातीं, खद-खद खातीं माँसन कों।
रुधिरन सों भरि-भरि, खप्पर धरि-धरि, नचतीं करि-करि, हासन कों॥

### त्रिभङ्गी

बज्जत जय-डंका, गज्जत बंका, भज्जत लंका, लौं अरि गे।
मन मानि अतंका, करि सत संका, सिंधु सपंका, तरि-तरि गे॥
नृप करि इमि रारनि, लरि तरवारनि, मारि पमारनि, फते लई।
लूटे बहु हय-गय, देत खलनि भय, जय में जय-जय, सुधुनि भई॥

### छप्पय

जय जय जय धुनि धन्य-धन्य, गज्जिय छिति छज्जय।
फहुरत सुजस-निसान, सान जय-दुंदुभि बज्जिय॥
सोभहि सुभट सपूत, खाइ तन घाइ अतुल्ले।
विमल बसंतहिं पाइ, मनहु कल किंसुक फुल्ले॥
तहँ 'पदमाकर' कवि बरन इमि, रन-उमंग सफजंग किय।
नृप-मनि अनूप गिरि भूप जहँ, सुख-समूह सु फतूह लिय॥

### हरिगीतिका

सुभ सुख-समूह फतूह लिय, हित मंजु मोदन सों भरे।
काली कपाली निस-दिना, नित नृपति की रच्छा करै॥

पृथु रित्ति नित्त सुवित्त दै, घन जित्ति वित्ति अनूप की।
नर बरनिये निरदानलो, हिम्मतबहादुर भूप की॥

## फुटकर

### कवित्त (प्रतापसिंह वर्णन)

कामद कला निधान कोविद कविंदन को,
काटत कलस निल कल्प तरु-कैसे हैं।
कहै 'पदमाकर' भगीरथ-से भागवान
भानुकुल भूषन भयो यों राम जैसे हैं॥
मानिनी-मनोहरन महत मजेजवत,
माधव-नरिंद-तनै तेजवन्त तैसे हैं।
कूरम कुलीन मान सिंहावत महाराज,
साहिब सवाइ श्रीप्रतापसिंह ऐसे हैं॥

### कवित्त (प्रतापसिंह वर्णन)

देत यहां असीस तुम, देत हैं असीस हम,
तुम बसु लेत, हम बसु लेत आये हैं।
कहै 'पदमाकर' तुम सुबरन बरषत,
हम हैं सुहाय सुबरन बरषाये हैं॥
राजन के राजा महाराजा श्रीप्रतापसिंह,
तुम सबनाथ हम छन्दनाथ छाये हैं।
जानियो न ऐसी कि ये विगिर बुलाये आये,
गुन गौर तिहार माहिं बरबस लाये हैं॥

### कवित्त (प्रतापसिंह वर्णन)

मूरत के साह कहै कोऊ नरनाह कहै,
कोऊ कहै मानिक के मुकुत दराज के।

राव कहै कोऊ उमराव पुनि कोऊ कहै,
कोऊ कहै साहिब ये सुखद समाज के ।।
देखि असबाव मेरो भरमैं नरिंद सबै,
तिन सों कहे मैं बैन सत्य सिरताज के ।
नाम 'पद्माकर' डराउ मत कोऊ भैया,
हम कविराज हैं प्रताप महाराज के ।।

कवित्त (प्रतापसिंह-वर्णन)

पुच्छन के स्वच्छ जे तरच्छन को तुच्छ करैं,
कैयो लच्छ-लच्छ सुभ लच्छनन लच्छे हैं ।
कहै 'पद्माकर' प्रताप नृप-रच्छ, ऐसे,
तुरँग ततच्छ कत्रि दच्छन को दच्छे हैं ।।
पच्छ विन गच्छत प्रतच्छ अंतरिच्छन में,
अच्छ अवलच्छ कला कच्छनन कच्छे हैं ।।
कच्छी कछवाह के विपच्छन के बच्छ पर,
पच्छिन छनत उच्च उच्छलत अच्छे हैं ।।

कवित्त ( प्रातपसिंह-वर्णन)

ज्वाला तें जहर तें फनिंद-फूनकारन तें,
बाड़व की बाढ़ हू तें बिषम घनेरो है ।
कहै 'पद्माकर' प्रतापसिंह महाराज,
ऐसो कछु गालिब गुनाहिन पै हेरो है ।।
चक्र हू तें चिल्लिन तें प्रलै की बिज्जुलिन तें,
जम-तुल्य जिल्लिन तें जगत-उजेरो है ।
काल तें कराल त्यों कहर काल काल हू तें,
गाज तें गजब्ब त्यों अजब्ब कोप तेरो है ।।

कवित्त (प्रतापसिंह-वर्णन)

पारावार-पार-लों अपार झिलि झारन,
अरिंदन पै हाल प्रलै-काल के परा परैं ।

कहै 'पदमाकर' त्यों ठौर-ठौर दौर दौर,
दीह दावादारन पै दार के दरा परैं ॥
साहिब सवाई श्रीप्रतापसिंह तेरी धाक,
धरा के धरैया धकधक्कन धरा परैं।
चड चक्र चाप-लौं उदड दड दाप-लौं,
सुमारतड ताप-लौं प्रताप के छरा परैं ॥

---

# भक्ति

## ( प्रबोध-पचासा )

### कवित्त

देव नर किन्नर कितेक गुन गावत, पै
पावत न पार जा अनन्त गुनपूरे को।
कहै 'पदमाकर' सुगाल के बजावत ही,
काज करि देत जन-जाचक जरूरे को ॥
चंद की छटान-जुत पन्नग-फटान-जुत,
मुकुट विराजै जटा-जूटन के जूरे को।
देखौ त्रिपुरारि की उदारता अपार जहाँ,
पैये फल चारि फूल एक दै धतूरे को ॥

### सवैया

राम को नाम जपो निसि-बासर, राम ही को इक आसरो भारो।
भूलो न भूल की भीरन में, 'पदमाकर' चाहि चितौनि को चारो ॥
ज्यों जल में जलजात के पात, रहै जग मे त्यों जहान तें न्यारो।
आपने-सो सुख औ दुख दौरि जु और को देखै सु देखनहारो ॥

### सवैया

भूख लगे तब देत है भोजन, प्यास लगे तो पियावन पाने।
त्यों 'पदमाकर' पीर हरे को, सुबीर बड़े बिरदैत बखाने ॥
है हम ही में हमारो महाप्रभु राम, इतै पै न मैं पहिचाने।
जैसे विचित्र सुपत्रन मे लिखे, वेदन भेद न पुस्तक जाने ॥

### सवैया

भोग में रोग वियोग सँयोग में, योग में काय-कलेस कमायो।
त्यों 'पदमाकर' वेद पुरान पढ्यो, पढ़ि कै बहु बाद बढ़ायो ॥

दूनी दुरास में दास भयो, पै कहूँ बिसराम को धाम न पायो।
कायो गमायो सु ऐस ही जीवन, हाय मैं राम को नाम न गायो।

सवैया

या जग जानवी जीवन का जस क्यों इक आनन गाइ अघैये।
त्यों 'पदमाकर' मारग है बहु द्वै पद पाइ किते किते जैये॥
नाम अनन्त अनन्त कहैं ते कहे न परैं कहि काहि जतैये।
राम की रूरी कथा सुनिबे को करोरन कान कहो कहाँ पैये॥

सवैया

मीठो महा मिसिरी तें मनोहर, को कहै कदकलान कै तैसो।
त्यों 'पदमाकर' प्यारो पियूष तें कामद कामदुघान के ऐसो॥
सीतल स्वाद सिरै रस तें, सुचि है जल गंग तरंग को जैसे।
क्यों न कहै मुख पाच हू सों, सिव सांचई राम को नाम है ऐसो॥

कवित्त

आवत हू जात खात खेलत खुलत गात,
छींकत छकात चुपचार हैं न रहिये।
कहै 'पदमाकर' परे हु परभात प्रेम,
पागत परात परमातमा न जहिये॥
बैठत उठत जात जागत जँभात मुख,
सोवत हू सापने न औरे नाघ नहिये।
रैन दिन आठो जाम, राम राम राम राम,
सीताराम सीताराम सीताराम कहिये॥

कवित्त

आयो मन हाथ तब आइबो न रह्यो कछू
भायो गुरु-ग्यान फेरि भाइबो कहा रह्यो।
कहै 'पदमाकर' सुगंध की तरंग जैसे,
पायो सतसंग फेरि पाइबो कहा रह्यो।

दान-बल बान-बल विविध बितान-बल,
छायो जस-पुञ्ज फेरि छाइबो कहा रह्यो।
ध्यायो रामरूप तब धाइबो रह्यो न कछू,
गायो रामनाम तब गाइबो कहा रह्यो॥

कवित्त

आस बस बास-बस विविध बिलास-बस,
बासना बढ़ी को सुर आसना-लौं हरिहौ।
कहै 'पदमाकर' त्यों अधम अजामिल-लौं,
औगुन हमारे गुन मानि ही तौ धरिहौ॥
गुह पर गीध पर गनिका गयन्द पर,
जाही ढार ढरे तबै ताही ढार ढरिहौ।
हैं रहौं तिहारे चरनन ही को चेरो कहूँ,
ऐसो मन मेरो कब मेरे राम करिहौ॥

कवित्त

औगुन अनंत खरदूषन-लौं दोषवन्त,
तुच्छ त्रिसिरा-लौं जा को एक हू न जस है।
कहै 'पदमाकर' कबंध-लौं मदंध, महा-
पापी हौं मरीच-लौं, न दाया को दरस है॥
मंथरा-लौं मंथर, कुपंथी पंथ-गाहन-लौं,
बालि हू लौं बिषयी न जान्यौं और रस है।
व्याध हू लौं बधिक बिराध-लौं बिरोधी राम,
एते पै न तारौ तौ हमारौ कहा बस है॥

कवित्त

उकुति अनेक हू पै एक हू कही न परै,
टेक ही हमारी केकही हू तें कठिन है।
कहै 'पदमाकर' न छाया है छमा की ऐसी,
काया काल कोह मोह माया की मठिन है॥

या तें गुह गीध-लौं सु बोधियो न मो सों राम,
मेरी गति घोर या कठोर कमठिन है।
लकगढ़ तोरिबे तें रावन सों रोरिबे तें,
मोहि भवबंधन तें छोरिबो कठिन है॥

कवित्त

व्याध हू तें बिहद असाधु हौं अजामिल तें,
ग्राह ते गुनाही कहो तिन में गनाओगे।
स्यौरी हौं न सुद्र हौं न केवट कहूँ को त्यौं न,
गौतमी तिया हौं जा पै पग धरि आओगे॥
राम सों कहत 'पदमाकर' पुकारि, तुम,
मेरे महापापन को पार हू न पाओगे।
सीता सी सती को तज्यो झूठोई कलंक सुनि,
साचोइ कलंकी ताहि कैसे अपनाओगे॥

कवित्त

जोग जप सन्ध्या साधु साधन सबैई तजे
कीन्हे अपराध ते अगाध मनभावते।
तेते तजि औगुन अनंत 'पदमाकर' तौ,
कौन गुनन लै के महाराजहि रिझावते॥
जैसे अब तैसे पै तिहारे बड़े काम के हैं,
नाहीं तौ न एते बैन कबहूँ सुनावते।
पावते न मो-सा जो पै अधम कहूँ, तो राम
कैसे तुम अधम उधारन कहावते॥

कवित्त

प्रलै के पयोनिधि लौं लहरैं उठन लागीं,
लहरा लग्यो त्यों होन पौन पुरवैया को।
नीर भरी भाँझरी बिलोकि मँझधार परी,
धीर न धरात 'पदमाकर' खेवैया को॥

कहा वार कहा पार जानी है न जात कछु,
दूसरो दिखात न खैया और नैया को।
बहन न पैहै घेरि घाटहि लगैहै, ऐसो
अमित भरोसो मोहि मेरे रघुरैया को॥

कवित्त

देखौ दिच्छ-दिच्छन प्रतच्छ निज पच्छिन के,
लच्छन समच्छ भय भच्छिबो करत हैं।
कहै 'पदमाकर' निपच्छन के पच्छ-हित,
पच्छि तजि लच्छि तजि गच्छिबो करत हैं॥
सुद्ध सहसच्छ के विपच्छिन के घच्छिबे को,
मच्छ कच्छ आदि कला कच्छिबो करत हैं।
लच्छिबो करत जस यच्छिबो करत जन,
आपने को राम सदा रच्छिबो करत है॥

कवित्त

धोखा की धुजा है औ रुजा है महादोषन की,
मल की मँजूषी मोह-माया की निसानी है।
कहै 'पदमाकर' सु पानी-भरी खाल ता के
खातिर खराब कत होत अभिमानी है॥
राखे रघुराज के रहै तौ रहै पानी,
न तो जङ्गी जमराज ही के हाथन बिकानी है।
जौ ही लगि पानी तौ लौं देह-सी दिखानीं,
फेरि पानी गये खारिज पखाल ज्यों पुरानी है॥

कवित्त

गोदावरी गोकरन गंगा हू गया हू यह,
ये ही कोटि तीरथ किये को लाभ चहिए।
कहै 'पदमाकर' सु ज्ञान यहै ध्यान यहै,
यहै सुख-खान सरबस्व मानि रहिये॥

पद्माकर कवि

ये ही जप ये ही तप यही जश जोग यहै,
ये ही भव रोग को उपाव एक चहिए।
रैन दिन आठो जाम राम राम राम राम,
सीताराम सीताराम सीताराम कहिये ॥

कवित्त

तापहर पापहर कलि के कलापहर,
तीलन नितापहर तारक तरैया को।
कहै 'पदमाकर' त्यों प्रगट प्रकाशमान,
पोषक पियूष ऐसो जैसो कामगैया को ॥
सुख सुखदायक सहायक सदन सुधा,
सुलभ सरन्य सरनागत श्रवैया को।
मठा भर कठवति परत न फीको नित,
नीको निरदोष नाम राम रघुरैया को ॥

सवैया

ये भवबाँधन बाँधिवे को सुख साधन ये ही सदा अभिलाखै।
त्यों 'पदमाकर' सालिगराम को है अरचा चरनोदक चाखै ॥
सु दर स्याम सरोरुह साँवरो, राम ही राम निरंतर भाखै।
देह धरे को यहै सुख है, उ विदेहसुतापति में चित राखै ॥

कवित्त

नाम बस सरनसा नाम गनिका सी तरी,
क्रोधवस रावन तर यो जो लंक लाछेर।
कहै 'पदमाकर' विमोह-वस विप्र तर यो,
लाभवस लुब्धक तर यो सो बान बाछेर ॥
औरे गीध गुह ग्रार ग्राह है, न गाए परै,
तेते तरि-तरि गे न केते काछ काछेर।
या तें निरि कौन हूँ कहूँ जो रघुराज ही के,
पाछेर परौगे तो तरौगे यार आछेर ॥

सवैया

या जगजीवन को है यहै फल, जो छल छाँड़ि भजै रघुराई।
सोधि कै संत महंतन हूँ, 'पदमाकर' बात यहै ठहराई॥
ह्वै रहै होनी प्रयास बिना, अनहोनी न ह्वै सकै कोटि उपाई।
जो बिधि भाल में लीक लिखी सो बढ़ाई बढ़ै न घटै न घटाई॥

सवैया

जैसे जरा के जरा कहि जागत, जात हू में न रहै छबि छाजी।
ज्यों कलिकाल के व्यालन तें 'पदमाकर' भक्ति फिरै भ्रमि भाजी॥
त्यों मुख राम के नाम के लागत, यों उठि जात कुपातक पाजी।
ज्यो छिन एक ही में छुटि जाति है, आतस के लगे आतसबाजी॥

सवैया

पेट की चौरे चपेट सही, परमारथ स्वारथ लागि बिगारे।
त्यों 'पदमाकर' भक्ति भजी, सुनि दंभ के द्रोह के दीह नगारे॥
कौन के आसरे आस तजो, सुधि लेत न क्यों दसरत्थ-दुलारे।
जोग, रु जज्ञ जपोतप-जाल, बिहाल परे कलिकाल के मारे॥

कवित्त

कीन्ही तुम सेत मै असेत कृति कीन्ही, तुम
धर्म अनुराग्यो मैं अधर्म अनुराग्यो है।
कहै 'पदमाकर' अखाँग्यो तुम लंकपति,
हम हूँ कलंकपति ह्वैवोई अखाँग्यो है।
हम तुम हूँ तें अति करम-करैया बड़े,
अकनि गने पै यों गुमान जिय जाग्यो है।
खीझियो न मो पै मुख लागत भले ही राम,
नाम हूँ तिहारो जो हमारे मुख लाग्यो है॥

कवित्त

सुखद सुकंठ-सखा साहिबसरन्य सुचि,
सुधे सत्यसंध के प्रबन्धन को ।

कवित्त

नीर के निकट रेनु रंजित लसै यों तट,
एकपट चादर की चादनी बिछाई सी।
कहै 'पदमाकर' त्यों करत कलोल लाग,
आवरत पूरे रासमडल की पाई सी॥
विशद विहगन की बानी राग रावती सी,
नाचती तरङ्ग ऐन आनँद बधाई सी।
अघ की अँधेरी कहूँ रहन न पाइ, फिरे,
धाई धाई गगाधार सरद जुन्हाई सी॥

कवित्त

आस करि आयो हुतो मैया पास रावरे में,
गाढ़ हू के पास दुख दूरि दुटि-दुटि गे।
कहै 'पदमाकर' कुरोग में सँघातो तेऊ,
गैल में चलत घूमि घूमि घुटि घुटि गे।
दगादार दोष दीह दारिद बिनाइ गये,
फिकिरि के फद बिन छोरे छुटि-छुटि गे।
जौ लौ आउ आउ तेरे तीर पर गगा तो लौं,
बीच ही में मेरे पाप पुज लुटि लुटि गे॥

कवित्त

जनम जनम जिन छोड्यो तौ न मेरो सग,
अग अग नित ही रहे जे लपटाने हैं।
कहै 'पदमाकर' तिहारी सौंह गगा जोग
जप के जतन में न नेकु अकुलाने हैं॥
तौन पाप मेरे तेरे तीर पर मैया अब,
मिलत न हेरे इत कित धौं हिराने हैं।
कची करार में बहे कै बाच घार में, कै
बूड़े वे सेवार में कि बारू में बिलाने हैं॥

कवित्त

योग हू में भोग में वियोग हू सँयोग हू में,
रोग हू में रस में न नेको विसराइये।
कहै 'पदमाकर' पुरी में पुन्य, रौरव में,
फैलन में फैल-फैल गैलन में गाइये॥
बैरिन में बंधु में विथा में बंसवालन में,
विपय में रन हू में जहाँ-जहाँ जाइये।
सोच हू में सुख में सुरी में साहिबी में कहूँ,
गंगा गगा गंगा कहि जनम बिताइये॥

फुटकर

कवित्त (वाल कृष्ण-वर्णन)

देखु 'पदमाकर' गोविन्द की अमित छवि,
सकर समेत विधि आनँद सों वाढ़ो है।
झिझिकत झूमत मुदित मुसुकात गहि,
अंचल को छोर दोऊ हाथन सों आढ़ो है॥
पटकत पाँव होत पैजनी झुनुक रच,
नेक-नेक नैनन तें नीर-कन काढ़ो है।
आगे नंदरानी के तनिक पय पीवे काज,
तीन लोक ठाकुर सो ठुनुकत ठाढ़ो है॥

कवित्त (राम नाम-माहात्म्य)

जोग जप जज्ञ कर तीरथ किये को फल,
पाइ चुक्यो पल में त्रितापन को तै चुक्यो।
कहै 'पदमाकर' सु सात हू समुद्र-जुत,
रतन जटित पृथिवी को दान दे चुक्यो॥
जाने विन जाने जा ने राम को उचार्‌यो नाम,
सो तो परिनाम हित एते काम कै चुक्यो।

तापन को ताड बमदड हू को दड, मेदि
मारतड मण्डल अखड पद लै चुक्यो ॥

कवित्त (गगा वर्णन)

कलित कपूर में न कीरति कुमोदिनी में,
कुद में न कास में कपास में न कद में।
कहै 'पदमाकर' न हस में न हास हू में,
हिम में न हेरि हारो हीरन के वृद में ॥
जेती छवि गग की तरङ्गन में ताक्यित,
तेती छवि छीर में न छीरधि के छद में।
चैत में न चैत चादनी हू में चमेलिन में,
चदन में है न चदचूड में न चद में ॥

---

# सहायक साहित्य

पुस्तकें :—


१. गंगा-लहरी—नवल किशोर प्रेस, लखनऊ
२. जगद्विनोद—भारत जीवन कार्यालय, काशी
३. पद्माकर की काव्य-साधना—अखौरी गंगा प्रसाद सिंह
४. पद्माकर पंचामृत—विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
५. पद्माभरण—भारत जीवन कार्यालय, काशी
६. प्रबोध-पचासा—भारत जीवन कार्यालय, काशी
७. बुन्देलखण्ड का इतिहास (प्रथम भाग)—श्री प्रतिपाल सिंह
८. बुन्देलखंड का इतिहास—श्री गोरेलाल द्विवेदी
९. मध्यकालीन शृङ्गारिक प्रवृत्तियाँ—परशुराम चतुर्वेदी
१०. मध्य-प्रदेश का इतिहास—नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी
११. मिश्रबन्धु-विनोद—गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ
१२. राम-रसायन—भारत जीवन कार्यालय, काशी
१३. रीतिकालीन कविताएँ एवं शृङ्गार रस का विवेचन } राजेश्वर चतुर्वेदी
१४. रीति-काव्य की भूमिका—डा० नगेन्द्र
१५. हिन्दी-काव्य-धारा—राहुल सांकृत्यायन
१६. हिन्दी काव्य-शास्त्र का इतिहास—डा० भगीरथ मिश्र
१७. हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास—हरिऔध
१८. हिन्दी-साहित्य का इतिहास—रामचन्द्र शुक्ल
१९. हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास—गुलाब राय
२०. हिन्दी साहित्य की भूमिका—हजारी प्रसाद द्विवेदी
२१. हिम्मत बहादुर विरदावली—लाला भगवानदीन

पत्रिकाएँ —


१ माधुरी, लखनऊ, ४।१।२, १२।२।१, १३।२।१

२ विन्ध्य भूमि, रीवा, बसंत अंक, शिशिर अंक, शरद् अंक एवं साहित्य अङ्क

३ विशाल भारत, कलकत्ता, वर्ष १४, अङ्क १

४ सरस्वती, इलाहाबाद, वर्ष ११, अङ्क ७ और मई, १९५६

५ साहित्य समालोचक—पद्माकरांक


